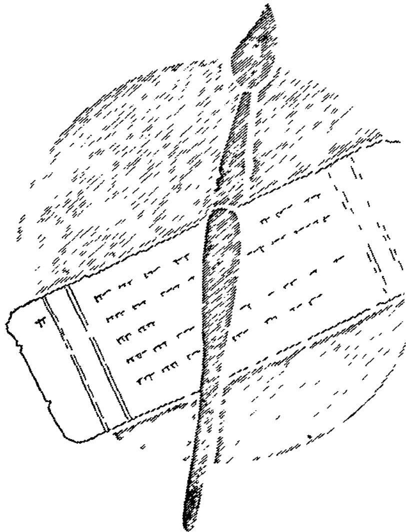


प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

कला और साहित्य

माखनलाल चतुर्वेदी

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन चावडी बाजार दिल्ली ११०००६
मुद्रक कला भारती नवीन शाहदरा दिल्ली ३२ /
संस्करण १९८९ मूल्य तीस रुपये

KALA AUR SAHITYA (collection of Essays)
by Makhan Lal Chaturvedi Rs 30 00
Published by Prabhat Prakashan Chawri Bazar Delhi 110006

भूमिका

सच पूछिए तो यह पुस्तक स्वयं भूमिका-जैसी है। इसकी भूमिका कैसी ? अत यह पाठकों के हाथों में जैसी-की तैसी क्यों न जाय ?

इसमें कल्पनाओं के आकाश में विचरण करने की मूखता नहीं कर रहा हूँ। यह तो जमीन पर पांव-पाँव चलने का छोटा सा प्रयास ही है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

प्रकाशक प्रभात प्रकाशन, चावडी बाजार दिल्ली ११०००६
मुद्रक कला भारती नवीन शाहदरा दिल्ली ३२ /
संस्करण १९८९ मूल्य तीस रुपये

KALA AUR SAHITYA (collection of Essays)
by Makhan Lal Chaturvedi Rs 30 00
Published by Prabhat Prakashan Chawri Bazar Delhi 110006

भूमिका

सच पूछिए तो यह पुस्तक स्वयं भूमिका-जैसी है। इसकी भूमिका कैसी? अत: यह पाठकों के हाथों में जैसी की-तैसी क्यों न जाय?

इसमें कल्पनाओं के आकाश में विचरण करने की मूर्खता नहीं कर रहा हूँ। यह तो जमीन पर पाव-पाव चलने का छोटा सा प्रयास ही है।

—माखनलाल चतुर्वेदी

विषय-सूची

१

कला और साहित्य

उस दिन अस्सी वर्ष के बूढे चर्चिल का, अस्सीवाँ वर्ष पार करने के उपलक्ष्य मे, ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्य सम्मान कर रहे थे। उस दिन चर्चिल को चर्चिल का ही एक तैलचित्र भेंट किया गया था। द्वितीय महायुद्ध का योद्धा अब बोलने के लिए खडा हुआ, तो उसकी आँखो मे कृतज्ञता के आसू थे। ये आसू वीर चर्चिल की आखो मे शायद ही कभी देखे गये क्योकि युद्ध शुरू करते हुए उन्होने कहा था, "वे आँसू और यन्त्रणा ही दे सकते हैं।' इस अभिनन्दन समारम्भ मे चर्चिल साश्रुनयन बोले कि, "मुझे आपने बडा कहा। मुझे बढानेवाली छोटी सी चीज आप जानते हैं कौन है? यह कि मेरे जीवन मे एक बहुत बडी चीज मेरे पास जो बैठी हैं मिसेज चर्चिल। मेरे यश की ये बहुत बडी हिस्सेदार, मेरे बडप्पन की ये महान् निर्मात्री हैं।" और भरी सभा मे भावावश मे महान् साहित्यकार और सामन्त चर्चिल ने श्रीमती चर्चिल को वही चूम लिया, किन्तु श्रीमती चर्चिल के नेत्रो से तो उत्सव के प्रारम्भ से ही आसू निकल रहे थे।

यह घटना तो मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जब चर्चिल-जैसे महान व्यक्ति का पौरुष कला बनता है, तब वह साश्रुनयन हो उठता है और अपनी कला के सम्पूर्ण कीर्ति बिन्दु की नारी की तरफ इंगित करके बताता है। यो कला तो लडकी की तरह है। वह स्वय जन्म लेती है और फिर नये ससार को जन्म देने लगती है। कलाकार भी यही करता है। इस तरह

कला म जो निर्मात्री शक्ति है, वह माता और निर्माता का कुछ गठबंधन-सा दिखायी दता है।

कला म धनिकता का शायद ही कभी काई रिश्ता रहा हा। धन स भडककर भागना कला का स्वभाव नही है किन्तु धन अभाग म कला तक पहुँचन की शक्ति शायद कभी न हो। इस देश म कदाचित मैंन तो धन को सदा ज्वर की तरह दखा। सामन थाली आयी, तो ज्वर मे मुह टढा करेंग, मुह फेर लेंगे और सामन कोई कलाकृति आयी तो आप दखेंग कि धनिक मुह टढा कर लेगा मुह फेर लेगा। इस तरह मुझे धन और ज्वर मे एक विचित्र भाई चारा दिखायी दना है।

एक बार एक मूर्तिकार मूर्ति बना रहा था। मूर्ति बनाते हुए वह खूब तल्लीन था। जिस समय वह नेत्र बना रहा था तो एक आदमी न उसे पुकारा, पूछा 'भाई यहा से महाराजा की बरात गयी?' उसन छेनी रख दी हथौडा रख दिया व पूछन लगा, 'यहाँ से? महाराजा की? एक बरात गयी?'

तीनो वाक्यो म जो सन्देह के चिह्न उसन लगाये वे कला की एकात्मकता के प्रश्न हैं। उलटे प्रश्नकर्ता के आगन्तुक से प्रश्न हैं। विश्व यह सोचे कि कला मे बहुत भाई-चारा है, सो बात भी नही। कला अपन म ऐसी कुछ भाणा म रूठनवाली लडकियो की तरह है कि वह सीधी तरह बठती ही नही। साहित्य का स्वभाव देखिए अथ को आगे करेगा स्वर को पीछे रखेगा। सगीत के स्वभाव को देखिए, स्वर आग अथ पीछे। दानो विपरीत। परन्तु साहित्य के बिना सगीत नही और सगीत के बिना साहित्य नही। दोनो कलाएँ अपने म स्वतन्त्र हैं, परन्तु कला की दृष्टि से जब मैं सोचता हूँ, तो मुझे लगता है कि साहित्य बहुत पिछडी कला है।

मूर्ति को आप देखें। मूर्ति तथा चित्र सगीत, नृत्य और साहित्य—ये पाच रूप मैं कला के विशेष मानता हूँ। मूर्ति ही आप बनाइए भारतवष म बनाइए स्विटजरलैण्ड में बनाइए इग्लण्ड मे बनाइए, एक मूर्ति आप बनाइए और उस मौन मूर्ति का विश्व भर म भज दीजिये। वह स्वय बता देगी कि वह कौन है। यदि वह चित्र जवाहरलाल का है यदि वह चित्र वैभव का है यदि वह चित्र बछडे को दूध पिलाती गैया का है, तो वह चित्र

स्वय कहेगा कि वह कौन है। उसमे किसी अनुवाद की जरूरत नहीं, किसी इण्टरप्रेटर की आवश्यकता नही किसी इधर से उधर करने वाले की आवश्यकता नही। उस मूर्ति की अपनी अपील पहुँच, अपना ज्ञान और अपनी समझ है। वह विश्व-भर की समझ है। चित्र भी उसी तरह है। चित्र की समझ भी मूर्तियो की तरह विश्व-भर मे फैली है। परतु एक कमी है। मूर्ति पर ऋतुओ का असर नही पडता। इसीलिए लोगो ने देव मन्दिरो मे मूर्ति की स्थापना कर रखी है। चित्र पर ऋतुओ का असर पडता है इसलिए मैं मूर्ति से चित्र को गौण मानता हूँ, यद्यपि उसकी अपील को मैं विश्वव्यापी मानता हूँ।

इनके सिवाय हैं सगीत और नृत्य। देश की सीमा मे, किसी भी देश की सीमा मे वे देश भर मे अपने ताल और स्वर से समझे जा सकते हैं। भारतवर्ष मे एक गायक त्रिवेन्द्रम का है और दूसरा वादक कश्मीर का। इन दोनो के गायन वादन से जो रागिनी उतर रही है, उसे सारे देश के लोग समझ सकते हैं। समझने वाले लोग यह अनुभव करते हैं कि गायक खमाच गा रहा है जैजैवन्ती गा रहा है ख्याल की दृष्टि से कह रहा है टप्पा गा रहा है या कोई और राग गा रहा है। आप बताइये यह कौन सिखा गया कि हिमालय पर तो सगीत हो और कन्याकुमारी से समझा जाये? समझ के इस मिलन का, देश के मेल का, आप अनुभव करते हैं जो कला की जेब मे रखा है? परतु सगीत और नृत्य की अपील विश्वव्यापी नही। यदि एक गीत यहाँ गाया जाएगा तो सम्भव नही कि उसे स्विट्जरलैण्ड के लोग समझ लें चीन के लोग समझ लें। यह नही होगा। इसकी अपील राष्ट्रीय अपील है, यह कला राष्ट्र भर मे समझी जाती है। नृत्य की भी वही हालत है, जो सगीत की है। चाहे कथाकली हो मणिपुरी हो, बैंगा के नृत्य हो, भीलो के नृत्य हो गोंडो के नृत्य हो—किसी के भी नृत्य हो— उन नृत्यो की पहुँच केवल देशव्यापी है विश्वव्यापी नही।

परतु साहित्य को देखिए। वह अनुवाद पर ही मुनहसर है। साहित्य थोडी-सी सीमा मे दबकर रह गया। आपने अपनी बात अपनी भाषा मे कही, अनुवाद हो गया, तो लोगो ने समझ लिया। अनुवाद नहीं हुआ, तो लोगों ने नही समझा। साहित्य बेचारा एक सीमा से बँधी बेसमझी अपने

साथ लिये घूमता है। परन्तु इसका जीवन कहाँ है ? साहित्य अगर कला है, तो उसका जीवन कहाँ है ? सारी चीजें शरीर की समझ म आती हैं, पर साँस का कोई चित्र नही लिया जा सकता। इसी प्रकार सारी कलाओ मे साँस का काम साहित्य करता है। नृत्य पर जो धुन बठायी जाती है वह साहित्य की है। गीत साहित्य देता है, वे गाये जात हैं। चित्र और मूर्तिया साहित्य-कथाओ पर निर्माण की जाती हैं। गरज यह कि साहित्य ऐसी चीज है कि वह सब कलाओ और विकासो की पष्ठभूमि है, सबका पष्ठ बिन्दु है और इतन ही के बल पर साहित्य को हम महान मानते हैं।

साहित्य मे एक चीज मेरी समझ में नहीं आती है स्पष्ट कह दें, क्योंकि वह उसको कला होने से रोकती है। वह है कठिन भाषा। मैं पढ लेता हू, मेरी भाषा और लोक-जीवन के मध्य म खडा होकर जो पहुँचने न देना चाहता हो वह चाहे भगवान भी हो, तो साहित्यकार को स्वीकार नही होता। कठिन भाषा हमारी वस्तु का फैलने से, आगे बढने से, रोकती है। इसलिए मुझे इस कठिन भाषा के सम्बन्ध मे बडी कठिनाई होती है। 'विषय के अनुकूल' कठिन भाषा लिखनी होती है मैं मानता हूँ। उस भाषा उस विषय का उद्देश्य जनता मे नहीं, गिने चुनो मे पहुँचना होता है। व ठीक कहत हैं, जो कहत हैं कि अरे भाई, तमिल की परवाह तो करो, तेलुगु की परवाह तो करो, मलयालम की परवाह तो करो, आसपास के एशिया क दशा को भी तो देखो कि कला किस तरह मिलती है।

एक जमाना बहुत बुरा था कि राजाओ और ऐय्याशो के यहा कला पेट भरने को लाचार हुई। परन्तु वह चली थी देव मदिरो से। देव मदिरो म उसका स्थान था। इसी देश के नहीं, दूसरे देश के देव मदिरो म भी उसका स्थान था। वह कला का स्थान जीवित रहे उसकी शक्ति अपरिमित रहे उसको बल देने वाली ताकत उसम रहे। वह देश मेल को जाग्रत कर सके और वह सारे एशिया और विश्व के सूत्रो को मिलान मे सफल हो सके। भारतीय कला के प्रति इन सदभावो को रखकर मैं अपने कथन की समाप्ति करता हूँ।



२

काव्य-सृष्टि काव्य-दृष्टि

यदि वसूल करने ही निकला, तो बेचारे कवि की कविता में से ऐतिहासिक जानकारी, सामाजिक स्थिति, धर्म और नीति के कुछ आदर्श तथा कुछ सिद्धान्त आदि बातों के टुकड़े हाथ लग ही जावेंगे, किन्तु काव्य-सृष्टि के विहरणशील के पास तो काव्य दृष्टि का होना ही अधिक जीवनदायिनी बात है। त्रिवेणी के तट पर, संगम के निकट प्रयाग स्टेशन वाले पुल पर खड़े होकर, सूर्योदय के समय जो सुषमा बिखरती है, उसका आनन्द इस बात की याद दिहानी से कैसे मिलेगा कि 'किले की सड़क पर कुछ मूंगफली बेचनेवाले भी मिलते हैं।'

काव्य दृष्टि और काव्य सृष्टि देखने जानेवाला ऐसा लगता है, मानो नन्दन निहारने जानेवाला अपनी आँखें घर छोड़ आया हो।

किसी अभिनेता या अभिनेत्री का अभिनय चातुर्य देखकर मुग्ध होने वाले कुछ चतुर अभिनेता के 'बैंक बैलेंस' और अभिनेत्री की उम्र का उल्लेख करते पाये जाएँ तो उन्हें नाट्य-नरक की उपाधि निःसंकोच दे दीजिए।

कविता के लिखने में कवि की कुछ नीयत होती है। कभी कभी, बहुत थोड़ी। प्राय तो कवि स्वान्तः सुखाय लिखता है। वह जब सूझों के बाग में उतर चुकता है और सूझती हुई बारीकियों में रंगीनियों में, डूब चुकता है, तब दीखते दृश्य, उनपर उगते चमत्कार और मानव के कोमलतर या प्रखर-

तम स्वभाव चित्र उसी की कलम से उतरते हैं, किन्तु अपने होश की मधुर-तम बेहोशी में ही। नियति और नीयत दोनों के नृत्य या कृत्य का उसे ज्ञान नहीं रहता।

यदि आकाश की कादम्बिनी की छहर लहर में बिजली किस ओर से, किस आकाश में चमक उठेगी इसका किसी को ज्ञान हो सके, तो सूझ भी किस दृश्य कृत्य या स्वभाव को देखकर उतर पड़ेगी इसकी किसी को पहिचान हो सके।

चुल्लू में रंग भरकर सफेद दीवाल पर मैंने दे मारा, और यह लो एक आकृति सी बन गयी। कुछ तो बनना ही था, सो बन गया। किन्तु यदि कोई कह कि ठीक ऐसी ही सौ आकृतियां एक रुपये फी आकृति बनाकर दो, तो चुल्लू मारनेवाला क्या एक भी आकृति ज्यों की-त्यों बनाकर दे सकेगा?

कवि की प्रतिभा में हिरन की सी छलांगें नहीं हैं। चरन धरत कांपत हियो है। उसमें शेर की सी दायें-बायें सर्वत्र सर्वकाल संचारिणी गति नहीं है, क्योंकि वह शेर जैसा इनहिं न भावत शोर—जैसा तो है किन्तु पथ छोड़ छोड़ देने वाला नहीं है। उसकी गति तो भगवान् वराह जैसी होती है, गति के समय राह में कौन पड़ गया कब पड़ गया, इसका भान नहीं रहता।

हाँ कविता में कुछ ऐसे दीखते हैं, मानो ध्येय हो कुछ ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो समाज के चित्र हों, कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो इतिहास बोल रहा है किन्तु वह सोचे हुए ज्ञान की इच्छित गति नहीं है, सूझों के सपनों के सस्मृतिमय प्रतिबिम्ब मात्र है।

यह बात नहीं कि कवि कभी सहेतुक लिख ही नहीं सकता। वह लिखता है—कुछ नाटक कुछ उपन्यास कुछ काव्य किन्तु उनमें मार्गभ्रमण की थका-वट होती है क्रिया के काव्य बनकर करों या चरणों पर उतरने का आनन्द-मय नृत्य नहीं होता। पहिले में पाठक को जरूरत का जायज माल मिल जाता है माना किन्तु प्राण नहीं मिलता। बाजार का सौदा मिल जाता है उन्मेष समर्पण स्नेह, बलिदान और अमर आनन्द नहीं मिलता।

अपने युग की जो जानकारी कवि की लेखनी में आ गयी वह इसलिए

कि वह उसे टाल न सका, वह उसे टाल नही सकता था।

युग के बाजारू पदचिह्नों को छोडने का परिणाम दखिए—अनेक शताब्दियो पूव शकुन्तला हुई, छठी शताब्दी म कालिदास हुए, और बीसवी शताब्दी म हम रहते हैं, यह भविष्य मे शताब्दियाँ अमर हैं। क्या सामाजिक धारणा, ऐतिहासिक जानकारी, धम तत्त्व, आदश, उद्देश्य आदि का ऊँट का टाडा अपन बोझ के बाद किसी रचना या रचनाकार को इतना अमर रहन देगा?

द्रौपदी के पाच पति सुनकर और तिब्बत म बहुपति प्रथा को धम मम्मत देखकर यदि कोई इतिहासकार पाण्डवा को तिब्बती बतावे, तो शोध मे डॉक्टरेट पानेवाला शायद प्रसन हो कि उसन कितना बडा शोध किया, किन्तु भगवान् वेदव्यास जरूर रो देगा। महर्षि व्यास को इस प्रथा का पता हो सम्भव है किन्तु महाभारत की रचना मे तो, द्रौपदी, मात्र प्रतिमा के रगो के महान उत्थान मे, तिब्बत मे नही है, भारतीय जमीन से विना बुलाये आ गया दीखता है। इस प्रथा के पते से सम्भव है भगवान व्यास ने द्रौपदी के निर्माण का, समाज की कठोरता के बीच भी साहस पा लिया हो।



३

सूझ और समस्या

मुझे लगता है, हमारा तरुण बहुत रुचिवादी होता जा रहा है, रुचिवादी यान रुचि का गुलाम। कभी वह किसीसे कुछ सुनकर लिखता है, कभी दश का उद्धार या किसीका भला करने का स्वाँग भरता है। कभी सोचता है कि इससे अच्छा मौका नही मिलेगा इसलिए इस मौके से लाभ उठा लो। कभी समालोचको और सम्पादको का पक्षपात अपन प्रलोभन द्वारा उन्हे अनावश्यक रूप स उकसाता है और इस प्रकारान्तर स उसकी प्रतिभा और श्रमशीलता का तजोभग करता है। आज तो उससे यह कहनवाला चाहिए कि हमारी यदि समस्याओ को सुलझाने की दिशा म तुमम श्रम की शक्ति नही है अथवा अध्ययन करने का मानसिक केन्द्रीकरण नही है, अथवा समाज म अपन को निबाह ले जान की सहिष्णुता नही है, तो तुम उस समाचार पत्र की तरह हो, जिसके अग्रलेखो म प्रेम और विश्वबन्धुत्व पर लेख लिखे जाते हो और अन्य पृष्ठो म भाइयो भाइयो को लडान की बातें और एक रात म नौ खून के विज्ञापन छापे जावें।

हमारे जीवन के 'ब्लैकबोड' को यदि कोई देखे, तो समाज की रूढियो प्रथाओ, आवश्यकताओ, अनुभूतियो और उथल पुथलों से हमारा शायद ही कोई रिश्ता रहा हो। हम बहुत ऊँचे से बोलें या बहुत नीचे झुककर जो हमारे सामने पड गया वही तो समाज नही है।

देश की सीमा पर पचनद स्थान[1] पाँचो नदियो के जल और स्थल की सीमा के झगडे म है, पर हमारी समाज रचना को कोई बात इसलिए नही मालूम कि इन झगडो के राजनीतिक सुलझाव का उत्तरदायित्व हमने शासन पर छाड दिया। अचम्भा इस बात म है कि पचनद की समस्त सीमा-समस्याआ म इस देश की लेखनी गैरहाजिर है। द्वारका से कामरूप और कश्मीर से रामेश्वरम् तक हमारी भौगोलिक सीमाएँ हैं। विनोबा-जसे साधु, देशव्यापी तीर्थ यात्रा भी कर रहे हैं, किन्तु हमारी लेखनी मानो कही उलझ गयी है।

अब स्वतत्रता प्राप्ति के बाद हम एक दूसरे के निकट तो आना चाहत हैं किन्तु यह निकट कौन लाना चाहता है? धन का लालच, प्रसिद्धि की इच्छा, सकल्प पर मर मिटने की साध नया युग-निर्माण करन का अहम या कुछ और?

और इरादो को छुपाकर क्रिया का आगे कर करके विश्व को विकासाभिमुख बनाये रखने के लिए, लगातार उद्योग किये जाते हैं तथा मानव विकारा के मूलधन को कभी उत्तेजित और कभी पराजित कर करके विश्वगति के अग्रगामी पडावा के प्र यक घुमाव को पूरा करने का प्रयत्न किया जाता है उस राजनीति कहते है, जब श दा म अर्थो का छुपाकर, मानव-विकारा को सूझा के आविष्कारो मे गूथ गूथकर मानव चेतना को ऊर्ध्वमुखी, सौन्दयप्रिय और ललक भरा बनाया जाता है तथा प्रत्यक क्षण आनवाले युग की आवश्यकताआ की पूर्ति की तैयारी की जाती है, वह कलापूण साहित्य कहलाता है। जीवन की दिशा म दानो दिशाआ म काई भेद नही ह। जब हम भेद अनुभव करते हैं तभी हम कही न कही, किसी न किसी से मिल जुलकर वलिदान अथवा सूझ का सवनाश कर बैठत है।

सच बात तो यह है कि हमम से अधिकाश का किसी विषय पर कोई मत नही है किसी विषय पर काई मत हो भी नही सकता। मत प्रकाशन और मतानुकूल वतन एक-दूसरे स इतन जुडे हुए हैं कि एक को दूसरे स बचाया नही जा सकता।

---

१ पजाब।

मजदूर तो बडे बडे खनिज या ऐतिहासिक क्षेत्रो म शोधा क रूप म अपने श्रम की सफलता के पथ पर पहुँचा हुआ दिखता रहता है, क्योंकि वह शोधक और दृष्टिदान करनवाले की देख रेख म काम करता है किन्तु लखन के मदान मे 'उडद के दानो मे कौन छोटा और कौन बडा?' परिणामत कही बिना दृष्टि की सृष्टि की भरमार है और कही बिना सृष्टि के केवल दृष्टि-ही दृष्टि का आडम्बर है। कही कही तो सूम मूखता की हिमायत का ही नाम है। इस क्षेत्र का अहम् इतना वीभत्स है कि यदि तली के बल की तरह हम इसी *अहम के आसपास चक्कर काटते रहे तो जीवन और कला उत्तरोत्तर परस्पर* शत्रु होते जाएगे और सृष्टा की अहम् की प्रतिक्रिया, यदि क्रिया की राजनीति के अहम म भी जाग्रत होती गयी तो जिन शक्तियो क सम्मिलन स जगत का सचालन होता है, उनम हाडवर बढाने क लिए ही हम अधिक काम आयेंगे।

हम भाषा और भाव परिभाषा और शब्द रोटी और राग का झगडा ही करत रहे और अणु युग आ गया। कहते हैं किसी समय एक कथा वाचक का वृद्धावस्था में एक तरुणी से विवाह हो गया। तरुणी का मातत्व अपन सुहाग स मातृत्व की भीख माँग रहा था और कथावाचक अपनी तरुण पत्नी का मनोरजन करने के लिए पैरो म घुघरू बाँधकर अपन सगीत और नृत्य से उस मगन रखन का जतन करत थे। कही कुछ ऐसी ही अवस्था युग की आवश्यकताओ के सामन हमारी पराजित सूझा की तो नही हो रही है?

कोई तीन सप्ताह पहल एक सज्जन न अपन एक मासिक पत्र की चर्चा की। मैंन निवदन किया कि यदि मासिक पत्र इसी देश के लिए प्रकाशित करें तो सबस पहले तो आप उस लखक के चमत्कार की पहली बलि न होन द। बिना चमत्कार के शब्दों म चरम सौन्दय और पुरुषाथ चमत्कार क शब्दो के मूल्यत्व स कहीं अच्छी लगेंगे। जब किसी आग्रह विवाद और अहम और हाँ अनुभूति क आप घायल हो जावें तो ईश्वर क लिए ध्यान रखें कि रचना के बीचो-बीच टूट जाना अच्छा नही है न टूट पडना।

वाणिज्य-व्यापार, तीथ यात्रा भरण-पोषण, और न जान किन किन कार्यों स हम जहाँ-तहाँ घूमना होता है। हम देखें कि कही इन स्थानो पर

सकुचितता के दूषित माल ढोने की बारबरदारी तो नही कर रह हैं ?

इगलिश, अमेरिकन, रशियन और फ्रेंच साहित्य के ग्रथो के बिना हमारा काम नही चलता। ऐसा तो न हो कि ऊपर लिखे गय सब इल्जाम हमारे साहित्य या साहित्यिक पत्रकार, लेखक, कवि और कलाकार को उसी के वरदान हो और देश को उसका परिणाम भोगना पड रहा हो ?

अत आवश्यक है कि हम सूझो के अहम से पराजित न होकर अथवा देशसवा के घमण्ड से अधमरे न होकर अपन अन्त करण, अपन विशाल दश, अखण्ड विश्व और ब्रह्माण्ड की ओर लौटें तथा सावधानी लें कि दीमक की तरह अपनी कीर्ति के टीले बनाकर हम कही 'अपनी सुन्दरता' म लपटकर दी जानवाली मूखताओ स विश्व मे आकलन के अभाव के बीज तो नही बो रह हैं ?



४

कमाल की प्रेम-कहानी

उस दिन स्मरना पर ग्रीक लोगो का कब्जा हो गया था और कमाल-पाशा टर्की के भाग्य की डोरी अपनी जिन्दगी और मौत से बाँधकर टर्की के दुश्मनो से लड रहा था। वे दुश्मन तीन थे—निकट व प्रकट सुलतान दूर का प्रकट ग्रीस और छुपा हुआ टर्की के मुल्की टुकडो का हिस्सेदार इग्लण्ड। स्मरना म कमाल की सेना वापस लौट रही थी और रेगिस्तानी खूखार लडाका कमाल अपनी फौज के लौटने का एक पहाडी पर चढा दूरबीन स निरीक्षण कर रहा था। उसी समय कमाल ने देखा जान पर खेलकर एक लडकी कुछ खबर लायी और तुर्किस्तान की फौजी गुप्तचर टोली को दन चली आयी।

[२]

लागा न दखा उस खबर देनेवाली सुन्दर लडकी पर टर्की के राष्टपति की मेहर नजर हुई। पूछताछ शुरू हुई—

'नाम क्या है ?'

नतीफ्ह।'

"उम्र ?

'२२ बप।'

"पिना का नाम ?"

"अबदुस्समद ।"

'निवास ?"

"यही फौज के द्वारा आग से जलाया जाता हुआ स्मरना ।"

"पिता का रोजगार ?"

"जहाजी व्यापार ।"

सदैव ही मरुस्थल के शान्त एकान्त को पसन्द करनेवाले खूखार शेर न पूछा—

"कुछ पढी हो ?'

"अरेबिक और फ्रेंच ।"

"कौन-सा पाठ्यक्रम लिया था ?"

"विज्ञान, इजीनियरिंग ।"

"शिक्षा कहा पायी ?"

"स्मरना म—पेरिस मे ।"

जबान हिली, भौह घूमी और कुवारी लतीफ्ह कमाल अतातुर्क की सेक्रेटरी हो गयी । मगर इस शेर का स्वभाव नही बदला । वह युद्ध के नक्शे बनाता, सेना का नियत्रण करता, देश मे उथल पुथल करता सब रेगिस्तान की बेरुखी और लडाके जतु की बहादुरी के साथ ।

पर एकात के कुछ क्षण एसे भी हाते, जब उस अपने साथी की जरूरत होती । अधिक गर्मी से चट्टानो मे भी कुछ गीलापन आ जाता है, नमी उतर आती है ।

एक दिन लोगो न देखा लतीफ्ह राष्ट्रपति की सेक्रेटरी, राष्ट्रपति की सुहागिन हो गयी, बडभागिन हो गयी ।

[३]

दिन बीते, रातें भी बीती, पर इस जोडी के दिन भी दिन होते और रातें भी दिन होती । अपन मौन ही मे दोनो बोलते । राजा अपन प्रेम से चुप रहकर बधे पडे रहने की माग करता । वह प्रेम से कहता अनुशासित सिपाही की तरह वर्दी और भोजन मे बँधकर उन घडियो की प्रतीक्षा कर, जब मुझे फुसत मिले जब खूब एकात हो और जब मेरा जी राजकाज की उलझना और

एकान्त की लहरों से एक आध दिन ऊब उठे, उस दिन तेरी बारी होगी। उधर प्रेम कहता, विद्यार्थी लतीफह तेरा उद्देश्य सुनकर तेरी पूजा करती थी। गुप्तचर लतीफह तेरे लिए प्राणों पर खेलकर खबरें लाती थी सेक्रेटरी लतीफह तुझसे भी अधिक सजीदा रहकर अपने मालिक का राजकाज सम्हालती थी। श्रद्धा थी, कर्त्तव्य था, जिम्मेदारी थी, देश भक्ति थी परन्तु विवाह का बंधन न था। प्रेम का वह अवतार न था, जब प्रेम समर्पण भी बना करता है और अपने आराध्य को अपना सबकुछ बनाया भी करता है। वेर-बेर के संग की अधिकार सीमा बेर-बेर का संग हो गयी।

[४]

कमाल को एकान्त, राजकाज, उलझन मरुस्थल, चिन्तन शासन उथल पुथल चाहिए था। उसे पता ही न था कि प्रेम को भी एक जगह देनी होती है।

उधर लतीफह शासन में सबकुछ कर सकती थी, यदि प्रेम का अपमान न हो। प्रेम को विश्वास रहे कि वह सूली पर टाँग नहीं दिया गया है।

सिपहसालार अतातुर्क प्रेम की आशा पर मुह फेरकर देख भी नहीं सकता था। वह देखेगा तो इस मरुस्थल इस सेना, इस शासन इस उथल पुथल इन सूलियों इन वायुयानों, इन जहाजों इन खजानों और हाँ तुर्की की स्वतन्त्रता का क्या होगा? उधर लतीफह सोचती—कौन कहता है कि हम दोनों एक हैं महज मौलवियों की वाणी तो प्रेम का पैगाम नहीं हुआ करती। विवाह में पढ़ी आयतों के साथ न तो खेला जा सकता, न वह मना ही कर सकती है, न वह प्रेम का अस्तित्व ही दे सकती है।

[५]

आखिर क्या होता? फ्रांस से शिक्षा पाये हुए दोनों विद्यार्थी थे कमाल और लतीफह।

कमाल ने पूछा, "क्या तुम झुकोगी?"

लतीफह ने कहा, "क्या तुम उस झुकाव की कीमत पर खुद झुककर उस झुके हुए पन को अपने हृदय से लगाओगे?"

दोनों मौन ?

कमाल ने पूछा— 'क्या प्रेम झुकेगा ?'

लतीफह ने कहा—' जिसने मातृभूमि के प्रेम को कभी न झुकने दिया, वह प्रेम से झुकने की आशा क्यों करता है ?"

फिर दोनों मौन !

फिर भी दिन दिन होते और रातें भी दिन बन जाती।

एक दिन कमाल ने पूछा, "क्या हम किसी एक विषय पर एकमत हो सकते हैं ?'

लतीफह बीच ही में बोली, "राष्ट्रपति, इसका जवाब अपने हृदय से पूछो।"

फिर दोनों मौन। अब मौन घण्टों दिनों, हफ्तों, पखवारों और महीनों से भी लम्बा था।

एक दिन फिर उगा। रात हुई, पर वह दिन ही बनी थी। सूरज डूब गया था पर आंखों की पुतलियां जाग रही थीं। कमाल ने उपेक्षा में पूछा— "क्या हम किसी विषय पर एकमत हो सकते हैं लतीफह ?"

लतीफह ने उत्तर दिया, 'हां, तुर्की के राष्ट्रपति के हाथों बड़े से-बड़ा दण्ड पाने की कीमत पर भी हम दोनों एक दूसरे से विदा लेने पर मिल सकते हैं।"

दिन आखिर उगा ही। लतीफह पुन: कुंवारी लतीफह थी। सुहाग तुर्की के रेगिस्तान के कणों से मिलकर गुम हो गया था और चमक रहा था। और रेगिस्तानी शेर यह जानता ही न था कि उसकी कोई चीज गुम गयी। लतीफह एशिया के प्रेम की प्रखरता है, कमाल एशिया की सैनिकता का रागहीन स्वप्न।



५

कला, श्रम और चिन्तन

विश्व मे साहित्यकार का चाहे जो महत्त्व हो या न हो, इस देश मे साहित्यकार अपनी सनक और सूझ मे उलझकर खुद मरने और औरो को मारने के लिए खुला नही छोडा गया, वह छोडा भी नही जा सकता। एक बार महात्मा गाधी ने कहा था, 'मैं विश्वास करता हूँ कि मेरा सन्देश विश्वव्यापी होगा, परन्तु इस मैं विश्व मे अपने देश मे की गयी अपनी कृतियो द्वारा ही भेज सकूँगा। यदि मैं भारत मे ऐसी सफलता करके दिखा सकू कि जिसे लोग अनुभव कर सकें, जान सकें, तो समझिए मेरा सन्देश पूर्ण हो गया।' गाधीजी के इस कथन का वारिस इस देश का राजनीतिज्ञ नही हो सकता वह तो स्कूल मास्टर के गुरुतर उत्तरदायित्व से खाली होकर भी दायो मे स्कूल मास्टर की तरह है। शाला का अध्यापक कुर्सी मे ऐसा चिपका रहता है मानो वह अपनी माँ के पेट से कुर्सी लेकर पैदा हुआ है वह अपने विद्यार्थियो मे इतना अहम धारण किये रहता है कि वह किसीकी सुनना नहीं चाहता, अपनी ही कहे जाता है। वह जीवन और ज्ञान के हर क्षेत्र मे अपने को योग्य मानता है और उपदेश करने बैठ जाता है। वह क्लास रूम मे बोलने का आदी होने के कारण दुनिया को भी क्लास रूम समझकर ज्ञान बघारने लगता है और इस बात को भूल जाता है कि उसकी बचकानी बातो से लोगों मे अरुचि उत्पन्न हो रही है क्योकि उसकी बातें मानव की चिरन्तन समस्याओ का हल नहीं हैं। वह एक ही साँस मे बोध करता है

और क्षमा का उपदेश दता है और इस तरह मन और वचन मे अन्य वस्तु रखन जैसे दुरात्मा का काम करता है और सदात्मा का स्वाग भरता रहता है। वह अपनी बातो से अपने श्रोता को समझकर स्वीकृत हानेवाली बातें नही देता, वह अपन श्रोता को निरुत्तर करता है। इस तरह अध्यापक और राजनीतिज्ञ अपन चरम अज्ञान की सतह पर साथ साथ चलते हैं और हमारे प्राचीन ग्रन्थ के इस कथन क साथ कि—

"अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्य पूजा तिरस्कृता ।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्ष मरण भय ।।"

सो सूझ और ज्ञान का दुर्भिक्ष, सम्पन्नता का मरण और अधिकार का भय, तीनो पैदा हुए बिना नही रहते। अध्यापक के पास उसके उच्चतर उत्तरदायित्वो म यह भी हाता है कि वह ज्ञान के रूप मे—ग्रन्थालय मे जाकर—अपनी प्राचीन सस्कृति सचित सन्तत्व अपरिमित त्याग, निगूढ चिन्तन और समस्याआ के सुलझाव के इतिहास से ऋण लेता है और अपन विद्यार्थियो की पीढी को ईमानदारी से बाट देता है किन्तु अधिकार विजित राजनीतिज्ञ को अध्ययन और समस्याओ स क्या लेना दना !

इस देश के चिन्तक की वेचनी यह है कि प्रेरणाएँ लेकर जगत को जीवन और ज्ञान दनवाले लोगा की लगभग एक हजार वष पहले ही परिसमाप्ति हा गयी—एसी धारणा लोगो मे बद्धमूल हो गयी और वे समझन लग कि विजय और महानताआ के भारतवष की शताब्दिया तो जान कब की बीत गयीं। इस भावना स दो काम एक साथ हात है—प्राचीन के प्रति श्रद्धा दिखान स जन जीवन नाराज नही हाता, वरिक प्रसन्न ही हाता है और प्राचीना की प्रशसा कर दन के सिवाय अपने लिए कुछ बाकी नही रह जाता। इस तरह हमारी श्रद्धा का बहाना, हमारी अकमण्यता को छुपान का एक सफल हथियार बन गया है और एक हजार वष तक गुलामी म प्रयोग करत करते हम श्रद्धा के दुरुपयोग क प्रयोग मे इतन पटु हा गये हैं कि अब यदि एक पीढी इस व्यवस्था से विद्रोह करती है, तो वह पूरे प्राचीन अध्ययन से सचित श्रद्धा से ही विरोध प्रारम्भ करती है। जिस जगत् को हम एक समझते हैं, वह अनक तन्तुओ स बनकर एक हुआ है। इस देश के उन्नयन मे मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता है। यह केवल वैज्ञानिक आविष्कार लेकर

उसपर टूटने म क्स सधेगा ? व्यक्ति अपनी भिन्न भिन्न आदना से पराजित है, यहीं का नहीं, विश्वभर का। कुछ वे हैं, जो उत्साह के बीमार हैं, जोश की महामारी के पराजित। कृष्ण के साथ रह या दुर्योधन के, देश या विश्व स उन्ह कुछ लेना-देना नहीं, उन्ह उत्साह चाहिए। ऐस लोग, बच्चे ता बच्चे ही है बूढे होकर भी बच्चे ही हैं। इनको तो उत्साह के चमचे स ही रुचि की भूख लगन पर नपा तुला दूध पिलाना होगा। दूसरे—इनसे ठीक विपरीत हैं, उनका किसी विषय पर कोई मत ही नहीं अत देश और विश्व के बुरे भले स सवथा मुक्त हैं। उनके लिए जो करेगा, यदि उनका विश्वास हुआ ता परमश्वर, नहीं तो भाग्य वह भी नहीं, तो शासन और कुछ भी नहीं तो उनका अपना विभाग या व्यवसाय माग गरज यह कि विश्व का उनपर कोई उत्तरदायित्व नहीं। तीसरे हैं, जिनका अहम बहुत जाग्रत्। इन्ह धनिक कहिए। धन के धनिक, जमीन के धनिक अध्ययन के धनी, सूझ के धनी। इनका अहम बहुत जाग्रत्। पृथ्वीमण्डल पर जहाँ जो कुछ हो रहा है इनकी कृपा स हो रहा है। जन जीवन काय चाहे जिस कौशल स सफल बनावे, किन्तु इनके घर इन्ह यश देने जाइए नहीं तो बने बनाये काय को सफल नहीं होन देंगे। वे तो ढालू जमीन के आदत के गढे हैं, जहाँ सिमिट सिमिटकर आदत के अनुकूल धन, विद्या, अध्ययन और सूझें एकत्र हुआ करती हैं। इनके दो ही स्थान हैं, या तो इनके अभिमान के मन्दिर इनके भवन या पागलखाना। दोनो स्थानो पर सूझा के धनिको का कभी टोटा नहीं पडता। चौथे हैं बडे सीधे देवता-स्वरूप किन्तु वायशीलता म शून्य। यहाँ अकमण्यता पूजा का स्थान लिये हुए है। समाज का कोई व्यक्ति न इनके जैसा अकमण्य हो सकता है और न अकमण्यता पर एक प्रहार ही सुन सकता है। भगवान की कृपा है कि ससार का जन-जीवन इन व्यवसायियो के घेरे स बाहर है और कृषि, वाणिज्य, खानें, कारखाने और मानव की आवश्यकता के अन्य स्थल आबाद हैं और मानव किसी तरह जीवित है। इन सब दृष्टियो से दखने के पश्चात अब हम सोचें कि हम समस्याओ पर नये सिर स सोचना है और यह अनुभव करना है कि हमारे चिन्तन की उम्र अथवा हमारे विकास का समय केवल पिछले पच्चीस वष नहीं, कम-से-कम ५००० वष है। उसी दृष्टि से हम निर्माण के महत्त्वपूर्ण कार्यों मे लगना है।

यह सोचना गलत है कि हमे श्रद्धा अथवा प्राचीन अध्ययन ने गुमराह किया है। जिस तरह समय के तीन टुकडे करके हमने अपनी सहूलियत का माग बना लिया है, उसी तरह प्राचीन और नवीन का भेद बनाकर हमने अपनी चिन्तन और क्रिया की कापुरुपता के स्वैर सचार के लिए स्थान सुरक्षित कर लिया है।

नवीन आविष्कार प्राचीन अध्ययन के ही अगले चरण हैं और नवीन समाज-व्यवस्था प्राचीन के गलित अशो से शेप बची रहनेवाली उज्ज्वल जीवन साधना का नवीन मागदशन है। अत अध्ययन और इतिहास के प्रेरणा-स्रोतो के प्रति हम न निराश हो, न उदास हो। किसीसे न लडना, किसी पर आक्रमण न करना बहुत अच्छी चीज है, किन्तु इस आदश को हम मूखता की सीमा तक न पहुँचाएँ। एक हजार वर्षों की गुलामी के पश्चात तो हम अनुभव करें कि सूत्रो, शास्त्रो, और शस्त्रो का बल वस्तुओ और ग्रन्थो से अधिक हमारी क्रियाशीलता मे निवास करता है। इसीलिए सजक, क्रियाशील साहित्यिक के लिए कला से भिन्न और कला व्यवसाय से भिन्न केवल सनक का सौदा और भाड का रोजगार करन लग जाना मैं कलाकार और साहित्यिक के लिए आवश्यक नही मानता। हिमालय की धरोहर से लेकर हिन्द महासागर के वैभव तक सबकुछ कला, विचार और श्रम के देवता की जागीर है। राजनीतिज्ञ मौसम की तरह आवेगा और चला जावेगा, किन्तु विचार, कला और श्रम की कहानी और याददिहानी पर युग बिगडेंगे और बनेंगे। रोटियाँ बचकर रात के अध्ययन का तेल खरीदने की क्षमता हममे ज्यो ज्यो कम होती जाएगी, त्यो-त्यो हमारा जन जीवन अन्त करण-रहित होता जाएगा। प्रति भवन मे प्रकाश करनेवाले गिने चुने ही दीपक होते हैं दीपको की दूकान नही सजायी जाती। कला, श्रम और चिन्तन के त्रिकोण मे से एक भी रेखा टूटी कि हम अपने युग को अस्पष्टता मे धकेल देंगे। जिस राजनीतिज्ञ को थोडी दूर सूझता है, हम यह क्यो चाहे कि वह अपना काम न करे। खयाल जन-जीवन से जितना दूर रहेगा, परिवतन उतना ही कठिन हो जाएगा और उतनी ही अधिक राजनीतिज्ञ की जिम्मेदारियाँ बढ़ जाएगी। उसे वह करना पडेगा, जो वह नही जानता और यह जानता है, उसके लिए उसके पास समय नही रह जाएगा, अत

के मूलधन का एक तरफ विश्व की विचारकता के साथ सामजस्य बैठाकर और दूसरी तरफ श्रम को ज्ञान के देव मन्दिर का श्रद्धाभाजन बनाकर हम नवीन युग के नवीन ऋषि के जीवन की ओर धीमे धीमे बढ़ें। कला अपन इलहाम से नही, अपने रियाज, श्रम, सौन्दय, माधुय और समपण से चिन्तन का भाग आलोकित करेगी। यही आकर हम सोचे कि हमारा समस्त विश्व-परिवार एक है उसमे भेद को जगह नही है। राजनीतिज्ञ अपनी मर्यादा म रहने को बाध्य होगा, यदि हम चिन्तन के लेखे-जोखे को क्रियाशील बनन के लिए गाँव गाँव, डगर डगर और घर घर पहुँचा सकें।



६

जो बोले, सो निहाल

'वाह गुरु की फतह' के कितने उपासक इस शब्द को, इस घोर ध्वनि को, इस श्रद्धा वाक्य को नही बोलते। कभी-कभी वाणी ऐसी ही हो उठती है कि 'जो बोले सो निहाल।'

अक्षरो की शरारत नही, हकीकत देखिए कि जिस दिन तारीख १५ जनवरी, सन् १६५० को १४ वर्षीय एक भिखारी बालक जम्मू से तेरह मील पर स्थित एक गाव मे करुण गीत गाकर शत शत नर-नारियो को करुणा मे डुबा तरा रहा था। कई दिनो का अधपटा बच्चा सहारा ढूढ रहा था। लोग उसे मनाकर सभा मे लाये, यह कहकर कि उसके जन्म लेने का अभिशाप आज वरदान बनेगा, आठ आठ आसू आज रोओ, आज सुननेवाला हाजिर है।

उस दिन कश्मीर के प्रधानमन्त्री उस गाव मे आये थे। वे आये थे, किसानो को 'भूमि का मालिक बनाने' के समारोह मे। मच बना था। भाषण हो रहे थे। भूमि किसानो को गरीबो को सौपी जा रही थी। आज से वे उस जमीन के मालिक होगे, कोई जमीदार या राजा नही। एक नया दुर्लभ दृश्य था। इतने ही मे फटे चीथडो मे लिपटी नन्ही सी, मासूम गरीबी मच के पास आयी और साहस देखिए कि मच पर चढ गयी। इस समय जीवन की दो दिशाएँ—व्यष्टि और समष्टि बनकर टकरा रही थी। प्रकटीकरण की भूख से भिखारी बालक परेशान था, और सभी

मे मच पर से बोलन और अपनी अवस्था का इजहार करने के लिए गरीब 'मानवता'।

वह भिखारी बच्चा ! उसका कण्ठ, मानो हिचकियो और हिलकोरो स घुलकर स्वर और अथ दोना को मिलाकर सजीव वेदवाणी बन गया था। उसने गाया, करुण गान गाया। गरीबी रो उठी, हाय हमारी यह तस्वीर तो किसीने नही खीची। अमीरी तडप उठी—क्या गरीबी इतनी दुखी है? स्वय प्रधान मन्त्री चुप न रह सके, वे बोले नही, किन्तु उनके सस्त भाषणा' स 'बहुत महँगे आसू उनकी आँखो पर भी बरबस, उसी गरीब भिखारी की तरह डरत डरते शान की दढता के ओठो को हिला उठे, आखो पर तरगित हो उठे।

किन्तु शासन के पास क्या है ? भिखारी बालक क बालो न छा दिया वातावरण। उसन कश्मीर वादी की गरीबी के करुण गान से जिसम हिन्दू-मुसलमान और ऊँच-नीच नही होते लोगो के हृदय को हिला दिया। लोगो को रुला डाला। प्रधान मन्त्री निहाल हो उठे, हरपे बरसे।

"सरकारी नौकरी ?"

' बेपढा है। '

"मगर लोग उसके बोलो मे स ऐसा पढते हैं जो पढा लिखा नही पढ सकता।"

' मगर वह आवारा जो है।'

"हमन देश की गरीबी को आवारा बन जाने दिया है आवारगी तो गरीबी का दूसरा नाम है, उसका पर्याय।'

'अब क्या होगा ?

' यह बच्चा कश्मीर के प्रकाशन विभाग म 'सरकारी नौकर' हागा।"

सरकारी नौकरी की हृदयहीनता कभी कभी इतनी हृदयवान भी हाती है।

× × ×

' किन्तु

"क्या, 'किन्तु' ऐसे समय मे भी ? '

"हाँ किन्तु' हमारी कृति का कठोर शासक है। क्या सरकारी नौकरी

मे, इस बच्चे का यही कण्ठ रह पायेगा ? उसकी जिन्दगी मे यही तडप रह पायेगी ? फटी चिन्धियो के उतरते ही, कहीं उसका ईमान तो उतरकर अलग खडा नही हो जायेगा ? क्या सरकारी नौकरी के सिवा, 'गायक गरीबी' को रोटी पहुँचाने का और कोई साधन सरकार के पास नही था ? हृदय हिलानेवाले गान का पुरस्कार 'पिजडा' तो हरगिज न था, भले ही वह सोने का हो।"

मेरी इन लकीरो को लडका सुने, तो मुझे शायद गाली दे। किन्तु मैं तो उसके गीत को उसकी ईमानदारी को उसके नववधू जैसे सकुचत सहमत मच पर चढने के साहस का पूज रहा हूँ। यदि ये तीनो चले गय, तो फिर लडके की लाश रहन रखकर कौन-सा पब्लिसिटी विभाग' लोगों के हृदय हिलान की क्रिया का लाज स्केल प्राडक्शन करके सुखी हो सकेगा ?

मुझे तो भय है कि कश्मीर के भिखारी लडके की तसवीरें खिचेगी, गीत होंगे, वह गायेगा भी, बाला म लच्छे भी होगे, कपडे फट न होंग, बढिया होंगे और कश्मीरी रूप कुन्दन पर यह सब फबगा भी खूब। किन्तु बच्चा जहा जहा जायेगा, लोगो का अपना लाडला न होगा, वह होगा पिजडे का पछी। गीत होगा, गाना होगा, रूप होगा, रुपया होगा, पीठ पर राजा भी होगा, किन्तु

एक और 'किन्तु' के भूकम्प से बचने के लिए उज्ज्वल मानवता न कितन जीवित 'मरण' वरण नही किये।

मेरी इच्छा है, कोई कश्मीर के प्रधान मन्त्री स कहता कि उस कश्मीरी छोकरे का रोटी और कपडे, सम्मान और स्नह, प्यार और दुलार, दिलाओ, किन्तु सरकारी नौकरी से उसकी रक्षा करो। यह 'गुनाह बेलज्जत' पीछे इन्सान खाती है, पहले ईमान खाती है। गरीबी पीछे दूर करती है पहले जन मन के प्यार के सिंहासन से आदमी को उतारकर फेंकती है।

कश्मीर उसका अपना घर है। क्या कला' वहाँ अपना मस्तक ऊँचा और अपने देश का मस्तक ऊँचा रखकर नही जी सकती ?

☐

७

स्वतन्त्रता की याद के द्वार पर

मेरा एक पड़ोसी सरकारी है। बीवी है। बच्चे भी दो हैं। सरकारी यानी राष्ट्रीय सरकार का नौकर है। उसका नाम रख दीजिए मनमोहन।

मनमोहन जरा रंगीला है। उस अपनी एक डाक्टर मित्र के यहाँ जाने का अभ्यास है। नाम है अपराजिता। अपनी कृति की सफलता खाली न जाय, अत लक्ष्यभेद के लिए वह अपने तीर कमान का साथ ले जाता है अपनी स्त्री को। अपराजिता को चाह का लालच और मनमोहन को प्रवेश की चिन्ता। राधा,—मनमोहन की स्त्री— शून्य है जो उन दो अंकों के बीच रहकर उनका मूल्य बढ़ा दिया करती है।

किसी प्राचीन राजधानी का एक मुहल्ला है। डा० अपराजिता का घर है। अब वह एक गोष्ठी-केन्द्र का रूप धारण कर गया है।

गोष्ठी में कवि आते हैं, सुननेवाले आते हैं। उनमें सरकारी, गैर-सरकारी का भेद नहीं है। तिस पर अब तो स्वराज्य हो गया है। सुनने के बहाने आये हुए लोग चौकन्ना। चाय हुई। पान हुए। कवि उठे। किन्तु एक बैठक और जम गयी। हमारा 'सरकारी नौकर' कवियों के उठते ही उठा नहीं बैठक में जमा रहा। चर्चा हुई।

'—स्वराज्य मिला तो, किन्तु विकृत मिला।

—यह तो महात्मा राज हो गया।'

'—शक्कर के इन खिलौनों को तोड़ खाना चाहिए और दूसरे फौलाद

के आदमी इनकी जगह चाहिए।"

कानाफूसी का यह सम्प्रदाय बढ चला। वेतन 'सरकार का', नारे पुरान ब्रिटिश राज्य के, ईमान पट का और शरीर? वह उन मित्रो का, जो विभाग म नये से-नये फितूर भरकर, समाज मे भेद बुद्धि जाग्रत कर सकें कि कोई दश म मिलकर न रह सके। और ब्रिटिश द्वारा छोडा हुआ समाज ऐसा, जिसम १०० म से ६० ऐसे, जो पढना लिखना नही जानत।

× × ×

मनमोहन उन लोगा मे बैठा पाया गया, जो एक दिन दिल्ली को उडा देना चाहते है। रिपोट हुई, पीछा किया गया, पकड म आ गये, सरकारी नौकरी छूट गयी।

छट गयी? किन्तु कितनो को पकडेग आप? इमान वेचकर जीनवाला का अभी हमारे घर टाटा कहा पडता है?

दूसर दिन गोष्ठी के एक मित्र न मनमोहन से कहा, 'रोटी इतनी ही बुरी चीज है। अच्छा किया, तुमने गुलामी को लात मार दी। चलो लो, मेरे वध गह म आदमियो का गाश्त बकरे का कहकर बेचन म तुम्ह १५० रुपय तनख्वाह अलग मिलेगी और बिक्री की एजेंसी का १० फी सदी और।'

सरकारी नौकर किराये पर हो गया। आदमियो को जिलान के लिए विद्रोह सोचनवाला व्यक्ति आदमियो को मारकर बेचने के रोजगार म नौकर हो गया।

सरकारी नौकरो का ताँता लगा था। वे रोटी कपडा मोटरें सामान सब कुछ देशघातको का पहुँचात थे। क्या वे विदेशी थे?

—जी नही, शुद्ध ऋषि-सन्तान। वे सवा के रूप मे तन दते थे, वस्तुआ के रूप म धन दत थ और अपन राष्ट्र की बारीक खबरें देश के शत्रुओ का पहुँचान के रूप म मन भी देते थे।

लोग उनकी बाता मे आते कसे थे? व तपस्या' करते, कष्ट सहत, थोडे रुपयो पर जीत और अपन लक्ष्य के आसपास व्यक्तियों, समाचार पत्रा और बदनामियो का एसा घेरा डालते कि एक बार चगुल म आकर बाहर हान की कोई हिम्मत ही न करता। भारतीय समय का टुकडे-टुकडे कर सोचन का

आदी है वह मातभूमि को भी प्रात म, भाषा म, समस्याओ म टुकडे-टुकडे करके सोचन का अभ्यासी है। वह तो समाज स, सम्पूण सस्कृति स अलग, अपन बच्चो म, अपनी बीवी में, अपन-आपम टुकडे-टुकडे करके दखने का आदी है। तब उसका ईमान भी टुकडो मे बिक क्यो न जाय ?

यह कोई नही कहता कि हम इग्लैण्ड के रूप को ग्रहण करके रह जाएँगे अथवा अमरीकी अमीरी का अनुकरण करेंगे। यह भी कोई नही कह सकता कि हम रूस के ढाँचे का अपन देश के लिए उपयोगी न समझेंगे किन्तु—

[१]

१६१७ की क्राति के बाद २२ वष तक रूस न युद्ध नही किया। वह *कवल पचवर्षीय और दशवर्षीय योजनाएँ बनाकर अपन को सशक्त करता* रहा।

[२]

युद्ध के बीचा बीच सारे विश्व के मजदूरो के एक हो जान के उपदश की खैरात अपने खरीदे हुए व्यक्तियों द्वारा बाटते हुए भी युद्ध मे, युद्ध के बाद, *समस्त देशो के कम्यूनिस्टो के लिए उसन अपन देश की सीमाएँ खुली* नही कर दी—अपनी सीमाओ की उसन कठोर रूप से रक्षा की।

[३]

अपनी कम्यूनिस्ट परम्परा क खिलाफ उसन रूस म कुछ भी नही रहने दिया—न समूह, न समाज, न सस्था न उपदेश।

[४]

उसन अपने नताओ क और अपन शासन के खिलाफ किसी गिरोह को रूस म काम नही करन दिया, *बलवान नही होने दिया।*

[५]

' रूस जिस वस्तु या देश के साथ रहा,

भी कौन मानेगा ? दूसरा महायुद्ध शुरू होने के समय अंग्रेज शत्रु और जर्मन मित्र और महायुद्ध के बीचो-बीच जर्मनी और जापान शत्रु और अंग्रेज-अमरीका मित्र।

परिणाम यह है कि विश्व के महान् राष्ट के नाते, अपनी नव निर्मित आदश परम्परा के बल पर रूस को जीना है और बलवान कहकर जीना है। उधर अमरीका, इंग्लण्ड और कितने ही पश्चिमी देशो का, अपनी स्थापित व्यवस्था के बल पर जीना ह। इन दोनो के बीच हमारी नयी नयी आजादी है। तीस कराड जनसख्या, खूब खनिज साधन, विश्व की बढिया उपज, बलवान कारखाने। ठीक इसी समय व्यक्ति के पक्षपात का सम्बल बनाकर, समष्टि का विश्व शत्रु हमारे भी पीछे पड जाना चाहता है।

वह बम्बई का बर्लिन बनाना चाहता है। वह दिल्ली को उखाड फेंकना चाहता है। यह नही कि वह दिल्ली का उखाड फेंकेगा, किन्तु यह सच है कि वह हमारे खिलाफ अनेक झूठे नारे उठाता आया है। उसन 'दिल्ली चलो' नारे का भी उठा लिया है।

दूसरी ओर एक और परम्परा है। उसने हैदराबाद की छुरी हमारे देश के कलेजे मे घुमा दी थी, पाकिस्तान को हमारे और रूस के बीच म पहरे पर बठा दिया है। कश्मीर को सूली की तरह हमारे सिर पर लटका रखा है। उसन अंग्रेजा को पाकिस्तान को बलवान रखन और हमारे विरुद्ध लडत रहन के लिए भिजवा दिया है और हमे विश्वास देता है कि हम इमानदार रहेंगे। हमारे इस प्रभावशाली न अमरीका स कनाडा का काटा था, आयरलण्ड से अल्स्टर काटकर आजादी दी, हमस पाकिस्तान काट दिया। यह इस परम्परा का अभ्यासी है। मिस्र सूडान से और अरब फलेस्टाइन से कट पडे ही हैं।

गाधी न जब भारतीय मानवता का जाग्रत किया, तब पराधीनता के खिलाफ बगावत की। गाधी का गदर सत्य हुआ। भारत स्वतन्त्र हुआ। इस समय गाधी के राष्ट्र को सँभलने, बलवान होने, अपने म सम्पूर्ण होने के लिए समय चाहिए साधन चाहिए, बलिदान चाहिए।

यदि सरकारी क्षेत्रो मे राष्ट्र का शत्रु किसी देश म निवास करता है, देश के बाहर गाधी के देश का शत्रु हमारे नाश के नक्शे बनाता है, तो हम

८

प्रतिभा के पैरो पॉव-पॉव

कविता जीवन की तरह ही जितनी दुलराये जाने की वस्तु है, उतनी युगो के लिए क्रियात्मक साधना की वस्तु भी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि धार्मिक धारणा सामयिक नियम, राष्ट्रीय आवश्यकता नैतिक आधार और व्यक्ति की उमगो और आकाक्षाओ के बावजूद यह हमे ध्यान रखना होगा कि कविता, कविता है। यह हमारी न जाने कैसी प्रवृत्ति है कि हम काव्य से दो माग एक साथ करते हैं जो एक दूसरे के विपरीत पडती हैं। हम युग की काव्य प्रवृत्ति से कहते हैं कि "ऐसा लिखो, जिसमे अनहोनापन हो, कुछ एसा बोलो जिस पर समय की दुहराहट के दाग न पडे हो" और जब कोई मस्तानी कलम दुखती-सी कसको, दीखती सी आपदाओ के बीच अपने अनन्त जीवन को अनोखे अनहोनेपन के साथ कागज पर उतार देती है, तब हम अपनी किसी यादो का पुराना कारखाना खोलकर कह उठते हैं यह व्यास-जैसा तो नहीं आया, बाल्मीकि जैसा तो नही बना, इसमे भवभूति जैसी आर्य भावना कहा है, कालिदास-जैसा नावीन्य भी नही है। नवीनता से पुरानापन वसूल करने का हमारा यह मोह हमारी नवीन पीढी में काव्य मे विद्रोह जाग्रत करता है। इसीलिए इस युग के कवि ने प्राचीनता के वैभव रथो का बैठना त्याग दिया है वह अपनी प्रतिभा के पैरो पाँव पाँव चलने को बाध्य है।

वह नन्हीं-नन्ही चिड़ियाओ जैसा अपने ही पखो पर उडने के लिए

यह मानकर चलें कि दोनों पक्ष बनानेवाले हमारे शत्रु हैं। और उनकी ओर खिंचनेवाला हर व्यक्ति राष्ट्रीयता को कमज़ोर करता है या बनाता है जो यह भूल जाता है कि गांधी ने देश में अमीरों या गरीबों के द्वारा पुन्ना के बल खड़ा करने में जीवन लगाया है उनसे सावधान रहना हम का परम कर्तव्य है।

हैदराबाद में हिन्दू व्यापारी भारतीय राष्ट्र के नायकों को नफाखोरी के लालच में छल पहुँचाते रहे। गिरजाघर और मसजिद दोनों स्थानों को शत्रु माननेवाले इन नफाखोर देशघातकों को क्या कृपि-सन्तानें कहेंगे? जो नौकर अपनी तरक्की और तनख्वाह के लिए भारतीय राष्ट्र को पराधीन रखने के लिए, भारत को नष्ट करने और गुलाम रखने के लिए भारत के शत्रु के हाथों कुल्हाड़ी का बेंट रखा उसकी शपथ पर, उसकी देशभक्ति पर उसके ईमान पर विश्वास करना अपने देश की सजग पहरेदारी नहीं कहा जा सकती। यदि लेनिन ने रूस को और पश्चिमीय परम्परा ने यूरोप और अमरीका को कुछ दिया है तो गांधी ने हमें भी कुछ अवश्य दिया है। प्रयोगों में जिनकी पिंडलियाँ काँपती हैं और जो कभी दायें के, कभी बायें के आन्दोलनवादों को उधार लेकर, भारतीय शत्रुता के समर्थक बनते हैं, उन्हें अपने समाज से समाप्त कर देना, हमारा हमारी कला का हमारे ज्ञान का हमारी पूजा भावना का, हमारे आदर्शों का और हमारे सत्याग्रह का एक दिन का खेल है। केवल हम धन पर ललचें और अधिकार-मद से पतित अपने स्वदेशी प्रान्तीय और स्थानीय अंशों की गर्दन मरोड़ सकें और विदेशों के बल की बात प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हम पर लादने और देश की दिशा भंग करनेवालों को ऐसा मार सकें कि चीन, बर्मा पेलेस्टाइन और सूडान की समस्या हमारे यहाँ पैदा न हो सके।

ऐसा चाहिए हमें हमारा नागरिक ऐसा चाहिए हमें सरकारी नौकर।

और इन दोनों पर सन्तरी की सी दृष्टि रखकर, अपनी कला का निर्माण करे और अपना बलिदान करें, ऐसा चाहिए हमें आज का भारतीय तरुण, शिक्षित।



८

प्रतिभा के पैरो पॉव-पॉव

कविता जीवन की तरह ही जितनी दुलराये जाने की वस्तु है, उतनी युग के लिए क्रियात्मक साधना की वस्तु भी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि धार्मिक धारणा सामयिक नियम, राष्ट्रीय आवश्यकता नतिक आधार और व्यक्ति की उमगो और आकाक्षाओ के बावजूद यह हमे ध्यान रखना होगा कि कविता, कविता है। यह हमारी न जाने कसी प्रवत्ति है कि हम काव्य स दो मागे एक साथ करत हैं जो एक दूसरे के विपरीत पडती है। हम युग की काव्य प्रवत्ति स कहत हैं कि "ऐसा लिखा, जिसमे अनहोनापन हो, कुछ एसा बोला जिस पर समय की दुहराहट के दाग न पडे हो और जब कोई मस्तानी कलम दुखती-सी कसकी दीखती सी आपदाओ के बीच अपन अनन्त जीवन को अनोखे अनहोनेपन के साथ कागज पर उतार दती है, तब हम अपनी घिसी यादो का पुराना कारखाना खोलकर कह उठते है यह व्यास-जसा तो नही आया, बाल्मीकि जैसा तो नही बना, इसम भवभूति जैसी आय भावना कहा है, कालिदास-जैसा नावीन्य भी नही है। नवीनता से पुरानापन वसूल करन का हमारा यह मोह हमारी नवीन पीढी के काव्य मे विद्रोह जाग्रत् करता है। इसीलिए इस युग के कवि न प्राचीनता के वैभव-रथो का बैठना त्याग दिया है, वह अपनी प्रतिभा के पग पाद पाद चलने को बाध्य है।

वह नन्ही-नन्ही चिडियाओ जैसा अपने ही पखो पर उडन के लिए

लाचार हुआ है, उसकी प्रतिभा के वैभव का वाह्य परम्परा के वटवक्ष पर अवलम्बित नही है। चाहे वह वक्ष जितना विशाल जितना वाङ्मीला, जितना महान हो, उसकी सूक्ष्म की फुदक उसके नन्हें-नन्हे उड़ान के पखा पर अवलम्बित है। जब कवि अपने प्रतीक आराध्य, अथवा प्रेरणा प्रवतक के रूप मे किसी एतिहासिक व्यक्तित्व का उल्लेख अपन काव्य म कर उठता है, तो तिथियां घटनाचक्रा और वश परम्पराओ का टीडा लाद इतिहास उसम अपनी निश्चयात्मकता ढूढन क्या आता है ? रघुवश या कामायनी, दोनो मे आय परम्परा के महान् वभव को देखा जा सकता है किन्तु व उस परम्परा के केवल इतिहास ग्रन्थ तो नही है।

कवि तो युग के पन्न उलट पुलटकर अपने सम्मुख के जगत को जो अमरत्वदान किया करता है वह अपने ही युग की आवश्यकताओ से लाचार होकर करता है। यदि इतिहास सा, धमशास्त्र सा, नीति ग्रन्थ सा, शासन परम्परा सा और ऐसा ही कुछ दिख जाय, तो उसकी कविता उन विषयो की विशेषता नही मानी जानी चाहिए। उसका काय केवल इतना ही है कि वह उन घटनाओ, धारणाओ और प्रवत्तियो को छुए बिना या उनसे प्रेरित हुए बिना अपनी बात नही कह सकता था। यह उत्तरदायित्व तो कवि की कलम के बराबर ही समाज की धारणा शक्ति पर है कि वह अपने युग की कविता को पढकर समाज को ऊध्वमुखी बनाये या उसे अधोमुखी हो जाने दे। जो भिनकती मक्खिया वाला ससार लिखते हैं और अपनी पीढियो के लिए कुम्भीपाक नरक का निर्माण करते हैं, उन पेशेवर पालतुओ का उल्लेख मैं यहा नही करता। मैं केवल हिन्दी ससार की उन प्रवत्तियो के लिए समाज से सहानुभूति माँगता हूँ, जो सूक्ष्म का अनूठा वैभव लेकर नित नवीन भाव से उथल पुथल करती बढी चली आ रही हैं। उनमे कुछ वे हैं जो अपने वर्णित विषयो को इतना ऊँचा उठा देते हैं कि जिनम उनका व्यक्तित्व और उनकी मौलिक काव्य प्रवत्तिया कही नही दिखाई देती। ऐसे लोग पूजा का साहित्य लिखते हैं और अपने वणन को अमर बना देते हैं किन्तु कुछ लोग किसी क्षण नही भूलते कि उनसे नवीनतर युग नवीनतम रक्त बिन्दुओ की माँग कर रहा है। वे कालिदास की तरह, पन्त की तरह महादेवी की तरह, निराला की तरह, दिनकर की तरह, नवीन की तरह मस्ताने गायक केवल

कलम पकडकर लिखने की तरह वर्ण्य विषय की परम्परा नही जोडते, किन्तु अपनी नवीनता, भावना, शैली, सूक्ष्म उपमा, वेदना और समर्पण मे ऐसे नवीन हो उठते हैं कि उनकी नवीन दुनिया प्राचीन बन्धो को काटकर छोटे-छोटे छन्दो मे उन विशाल सूक्ष्मो का वैभव विश्व पर बिखेर देती है, जो युगान्त की परम्परा की उपेक्षा कर सूक्ष्मो के देवालय के देवता के प्रासाद का निर्माण किया करते हैं। इन नवीन प्रवृत्तियो के साथ मेरा मोह है और मैं इन्हे प्यार करता हू। मेरे जीवन की साँसें इनकी पूजा मे काम आयें, मैं ऐसी इच्छा करता हूँ।



९

लेखक : एक मार डालने की वस्तु

वर्तमान तरुण को समझना कठिन होता जा रहा है। इसलिए नहीं कि हमने उसे समय पर उचित आदर्श नहीं दिये, किन्तु कदाचित इसलिए कि हमने उसे जरूरत से अधिक आदर्श एकत्र करने दिये। उन आदर्शों का किताबों, कला निकेतनों और कर्मक्षेत्रों में देखकर वह कह उठा आदर्श = सफलता = जीवन फार' जीवन। और उस दिन तारीख १६ ६ ५१ को पटना में आचार्य कृपलानी ने कह दिया आदर्श तो उन्नीसवीं सदी में हमने लोगों को भ्रम में डालने के लिए गढ़े थे। क्या उन्नीसवीं शताब्दी के पहले आदर्श थे ही नहीं? उन्नीसवीं सदी अपनी बेईमानियों से ऊबकर आदर्श इकट्ठा करने की ओर अधिक आकर्षित हुई होगी, जो एक न पूर्ण इनकार करने योग्य तथ्य है न पूर्ण मानने योग्य, यह तो एक सन्देह करने योग्य तथ्य है। किन्तु आदर्श फसल की तरह नहीं उगते। शताब्दियों के मानव व्यवहार की आवश्यकताओं से प्रेरणा पाते हैं और समस्त मानवता का पथ प्रदर्शन करने की ऊँचाई से बोलने लगते हैं।

यदि हम चाहते हैं कि लेखक श्रेणी के रूप में जीवित रहे वह लेखन को अपने जीवन का व्यवसाय बनाये, वह विश्व का ज्ञान और भ्रमण दोनों स्वीकार तो हम उसे भूखों मारने का वर्तमान व्यवसाय शीघ्र से शीघ्र बन्द करें। उसकी छपी पुस्तक पर पुरस्कार देने के बजाय उसकी हस्तलिखित प्रति पर पुरस्कार दें और उसे इस लायक बनावें कि एक तो विश्व की समस्या समझने

के लिए, साहित्य खरीदने के लिए वह धन और साधन पा सके, दूसरे वह इतने हल्के स्तर पर जीने के लिए बाध्य न किया जाय कि जिस स्तर से दी गयी व्यवस्थाएँ, सम्मितियाँ या विचार किसी उत्तरदायित्वहीन लफ्ज में विचार कहकर लोग टाल दें।

लोगों में एक विचित्र पागलपन है। वे जन सम्पर्क का लेखक के लिए भी यह तरीका समझते हैं कि वह कहीं कोई मजदूरी करे और उस अनुभव के आधार पर लिखे। मजदूरी और उसके उत्तरदायित्व, अभाव और उससे उत्पन्न परिस्थितियों की नाजबरदारी करते-करते उसमें का लेखक कभी का मर चुकेगा। वैसी मजदूरी करने के पश्चात उसमें जान ही कहाँ बाकी रहेगी, जो वह लेखक होने की मजदूरी का बोझ सम्हाल सके।

नहीं, लेखक, मजदूर, साधारण मजदूर से भी बदतर होता है बेचारा! मिल कारखाने, भट्टी या खेत मजदूर की जिम्मेदारी तब शुरू होती है, जब वह अपने काम पर जाता है और उसका कार्यक्षेत्र बन्द हुआ कि मजदूरी बन्द। उसके बाद वह पूरा विश्वास कर सकता है। उससे कोई बोलता नहीं कि तू आराम क्यों करता है। किन्तु लेखक मजदूर जब अपनी कृति कहीं लिखता बोलता या सुनाता होता है तब वह अपने मालिक या उत्तरदायित्व का जर-खरीद गुलाम होता है, किन्तु इसके बाद वह पढ़ने में जुट जाता है और दूसरे दिन अपने मस्तक को साहित्य देकर काम करने लायक बनाता है और जब वह खाली रहता है, तब सोचने और दूसरे दिन कार्य का नक्शा बनाने की मजदूरी से उसकी मुक्ति नहीं। अतः लेखक को मजदूर कहनेवाले लोग लेखक के प्राणों के ग्राहक न बनकर उसके साहित्य ही के ग्राहक रहें, तो उनकी बड़ी कृपा हो।

'लेखक का तो सब कुछ उधार। जब किताब बिके, तब रायल्टी मिले, जबकि मजदूर तो बोनस, मजदूरी और ओवर-टाइम, सब कुछ समय पर पा लेते हैं अतः यदि हम लेखक को जिलाना चाहते हों तो उसकी मजदूरी देखकर उसे चुकावें। उसके खून का साहित्यिक स्वाद लेकर महज अच्छा है' न कह दें। न जब वह सुविधा और रोटी की माँग करे, तब उसे बुर्जुआ कह कर उसका मजाक उड़ावें। भूखी जिन्दगी बिता, जरायम पेशा की तरह दिन रात काम कर और 'अपना नाम न बढ़ने दे' यह एक षड्यन्त्रकारी की

जिन्दगी है। ऐसी जिन्दगी लेखक की नहीं हो सकती, उस लेखक की जो लोगों के मन खींच सकने की क्षमता के महान् वैभव को किसी देश की महान उथल पुथल के लिए लगाना चाहता है। उसे प्रसिद्धि के द्वारा टूट पड़नेवाले सारे अभिशापों को स्वीकार करना ही होगा। उसे प्रसिद्धि से बचकर नहीं रहने दिया जा सकता।" उपर्युक्त पंक्तियाँ मेरी नहीं हैं। ये पंक्तियाँ रूस के राजनीतिक निर्माता लेनिन की हैं जिन्हें मैंने डी० सी० लेविस के एक कथन के अवतरण में से उठा लिया है।

अन्य मजदूरों की तरह लेखक मजदूर चूंकि क्षण क्षण अपनी नीयत का इजहार करने के लिए लाचार है साधारण मजदूरी-जैसी उसकी मजदूरी सुरक्षित नहीं। धन प्रभाव, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के क्षेत्रों में जब यह मालूम हो जाता है कि हमारी हमारे रोजगार की, हमारे मित्रों की प्रशंसा नहीं करेगा, तब उसके लेखन की श्रेष्ठता की प्रशंसा करके भी उसे भूखों मारने का षड्यन्त्र सजाया जाता है। यह तो बहुत दूर की बात है कि उसने अपने द्वारा असमर्थनीय लोगों की आलोचना की हो या उन्हें भला बुरा कहा हो। गरज यह कि उसकी प्रतिभा का सम्मान केवल एक आगलिक भ्रम है। यथार्थ में तो उससे समर्थन, और अपने स्वार्थ के लिए आदर्श उद्देश्य उपदेश, तर्क और अवतरण मांगे जाते हैं। वह देता है तब तो अन्तरात्मा का बेईमान बनकर जीते जी मरता है, नहीं देता है, तो मार डाला जाता है। यदि ऐसे समय चिन्तकों और लेखकों का मूल्य कूतनेवाले लोग भी उनसे मजदूरी वसूल करने लगें तो लेखक की सी नारकीय जिन्दगी बिताने के लिए कौन तैयार होगा ?

जिह्वा या कलम की जिन्दगी को पाँच छलनियों में छाने जाने के लिए लेखक लाचार किया गया कि फिर क्या शेष रह सकता है। वे पाँच छलनियाँ ये हैं—

(१) कहीं समाज मेरा तिरस्कार या बहिष्कार न कर दे।

(२) कहीं मेरे साथी और मित्र नाराज न हो जाएँ ?

(३) कहीं सारी लिखावट का खरीदार और पैसे देनेवाला न मिला तो ?

(४) कहीं मरी लिखावट से सरकार नाराज होकर बरबाद करने पर तुल गयी तो ?

(५) कहीं मरी लिखावट से प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और पैसे की धनिकता ने मेरा पीछा किया और भूखो मार डाला तो ?

क्या ऐसे महान् खतरा के बीच अपनी बात कह ले जान और महान् परिवतन कर ले जानेवाला लेखक, भूखा मार डाला जायगा ? क्या हमारी इसी क्रूर वत्ति ही न लेखक को वह साहित्य पैदा करन के लिए बाध्य नही किया, जिसन विश्व को सघर्षो स भर दिया है ? क्या ऐसी भी कही कोई दुनिया है, जा लेखक की रचनाआ के बगैर पढे लिखेगी, और धारणाओ को रखकर जि दा रह ले जायगी ? यदि नही, तो लेखक को मार डालने के ये जाने-अजान औजार क्या ?



जिन्दगी है। ऐसी जिन्दगी लेखक की नहीं हो सकती, उस लेखक की जो लागा के मन खीच सकन की क्षमता के महान् वैभव को किसी देश की महान उथल पुथल के लिए लगाना चाहता है। उसे प्रसिद्धि के द्वारा टूट पडनेवाले सारे अभिशापो को स्वीकार करना ही होगा। उसे प्रसिद्धि स बचकर नही रहन दिया जा सकता।" उपर्युक्त पक्तियाँ मेरी नही हैं। ये पक्तियाँ रूस के राजनीतिक निर्माता लेनिन की हैं, जिन्हे मैंने डी० सी० लेविस के एक कथन के अवतरण म से उठा लिया है।

अन्य मजदूरो की तरह लेखक मजदूर चूकि क्षण-क्षण अपनी नीयत का इजहार करन के लिए लाचार है साधारण मजदूरी-जसी उसकी मजदूरी सुरक्षित नही। धन, प्रभाव, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के क्षेत्रो मे जब यह मालूम हो जाता है कि हमारी, हमारे रोजगार की हमारे मित्रो की प्रशसा नही करेगा तब उसके लखन की श्रेष्ठता की प्रशसा करके भी उसे भूखो मारने का षडयन्त्र सजाया जाता है। यह तो बहुत दूर की बात है कि उसने अपने द्वारा असमर्थनीय लोगो की आलोचना की हो या उन्हे भला बुरा कहा हो। गरज यह कि उसकी प्रतिभा का सम्मान केवल एक जागतिक भ्रम है। यथाथ म तो उसस समथन, और अपने स्वाथ के लिए आदश उद्देश्य, उपदेश, तक और अवतरण माँग जाते है। वह देता है तब तो अन्तरात्मा का बेईमान बनकर जीते जी मरता है, नही देता है, तो मार डाला जाता है। यदि ऐसे समय चिन्तको और लखको का मूल्य कूतनवाले लोग भी उनसे मजदूरी वसूल करने लगें तो लेखक की सी नारकीय जिन्दगी बिताने के लिए कौन तैयार होगा?

जिह्वा या कलम की जिन्दगी की पाच छन्नियो स छान जाने के लिए लेखक लाचार किया गया कि फिर क्या शेष रह सकता है। वे पाच छन्नियाँ ये हैं—

(१) कही समाज मरा तिरस्कार या बहिष्कार न कर दे।

(२) कही मेर साथी और मित्र नाराज न हो जाएँ?

(३) कही सारी लिखावट का खरीदार और पैस देनेवाला न मिला तो?

(४) कहीं मेरी लिखावट से सरकार नाराज होकर बरबाद करने पर तुल गयी तो?

(५) कहीं मेरी लिखावट से प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और पैसे की धनिकता ने मेरा पीछा किया और भूखों मार डाला तो?

क्या ऐसे महान् खतरों के बीच अपनी बात कह ले जाने और महान् परिवर्तन कर ले जानेवाला लेखक, भूखों मार डाला जायगा? क्या हमारी इसी क्रूर वृत्ति ही ने लेखक को वह साहित्य पैदा करने के लिए बाध्य नहीं किया, जिसने विश्व को संघर्षों से भर दिया है? क्या ऐसी भी कहीं कोई दुनिया है, जो लेखक की रचनाओं के बगैर पढ़े लिखेगी, और धारणाओं को रखकर जिन्दा रह ले जायगी? यदि नहीं, तो लेखक को मार डालने के ये जाने-अजाने औजार क्यों?



१०

अभाव-अभियोग

अभी चालीस-पचास बरस पहले तक हिन्दी काव्य मे कही व्रजवासिनि, कही बुन्देलखडिन कही बैंसवाडिन कही भोजपुरिन कही निमाडिन कही मारवाडिन, कही मालव-बाला साफ उतरती थी, किन्तु इधर ५० वर्षों से नारिया तो वे ही हैं किन्तु कविता म मानो उनका अकाल पड गया मानो हम एकीकरण की भावना म अनेक अकों की एक सख्या बनाने जा रहे थे और बन गयी बडी सी शून्य की आकृति।

अब 'रास पचाध्यायी' कहाँ ? अब 'रामकलेवा' कौन गावे ? अब सुदामा चरित' किसके पास रहा ? अब 'रुक्मिणी मगल' कौन सुने ? अब बरवै और कवित्त रामायण घर घर म कौन गुने ? अब 'काहू बिरछ तर भीगत ह्वैहैं राम लखन दोउ भाई' अवध म आज भी वृक्षा-तले नर-नारी भीजत हैं किन्तु *अब उनपर काव्य कौन लिखेगा ? अब हरदौल की कहानी किसके जबानी* सुनें ? अब दुर्गावती की वीर-गाथा गीता म कहाँ सुनायी दे ? देहात की नारी की, उसके जीवन की, उसके हरे-हरे निर्माणो और सुपल्लवित और सुफलित वरदानो को, जो कहाँ भूल गये हम ? जो रामायण भागवत और अवतार-कथाएँ हमारी माँ-बहिन-बेटियो के मुह पर थीं, वे कहाँ विलीन हो गयी ? बदले म हमने कुछ थोरा कुछ रगीलापन और कुछ बेशर्मी भी पायी किन्तु मूर्तियाँ बेचकर माना सिनेमा की तस्वीरें खरीद लाये। अनाज बेच दिया और बरफ बनाने की हिकमत ले आये और यदि गाथा तथा अपनी कहानिया,

अपन मुहावरा, व्यग्य और विनोद की ओर लौटने की कहिए तो शून्य का प्रजनन कर सुखी होनेवाले हम अको के अजन के अभाव मे भी कितने धनवान? रूस की, चीन की, इग्लैण्ड की अमरीका की बात करत नही अघाते। अपने घर की सीढियो की सख्या और बनावट का अपरिमित अज्ञान है और नियाग्रा की गहराई पर बहस हो रही है, मानो चलता फिरता सजनशील युग सभ्यता नामक सून्य हीनता की चौखट की चढी हुई तस्वीर हो गया है। हम ही थ, जो पिंगल लेकर बैठनवाले को पागल कहते थे और हम ही हैं जो कुछ भी न जानन कुछ भी रस न रखनेवाले को 'काव्य' का स्वामी कहने लगे। तुक जोडे तो मरजी, तोडे तो मरजी और मरोडे तो मरजी, आधा इच की पक्ति हो, डेढ इच की पक्ति हो और फिर पूरी तेरह इचो की पक्ति— 'पाँचा सवार दिल्ली जा रहे हैं।' हमारी सूझ-बूझ और हमारी आराधना आदि की हमारी सस्कृति थी और हमारा पश्चिम का अपनाया हुआ अत्युच्च वैभव 'कुपच' बनकर हमारी सस्कृति मे समा गया।

'लाड कजन वुड हैव बीन ए ग्रेट मन इफ ही वुड हैव फारगाटन लाड कजन'। कजन के आलोचक द्वारा वर्णित इस स्वभाव से हिंदी म हमारी गति मिलती जुलती है। कच्ची उम्र म आनेवाले अपरिपक्व आवेगो को काव्य या निमाण कहने का हमारा मोह और अत्यन्त नगण्य निर्माण अथवा निर्माण के अभाव म भी इस बात की परम सजगता कि हम निर्माता हैं, हमार द्वारा निर्माण कला, तत्त्व चिन्तन और इतिहास म हमारी सबल पीढी के निर्माण मे सबसे बडी बाधा बन जाते हैं।

[२]

'कवि जावधारी' और कवि मनुष्य' जब मिलकर एक हान लगत हैं तब उस अवनारी नटश्वर मे 'एक्सेप्शनल आफेंस टू इमोशनल इम्प्रेशस' आय बिना नही रहती। इसलिए 'वेदना, कवि मनुष्य और 'कला-प्राणी, दानो की आवश्यक शत नही, यह उनकी लाचारी है। वह दिन धन्य, वह लहर धन्य, वह क्षण धन्य, जब देखा दखी, चोरा-चारी और जारा जोरी के वणन स, 'कवि प्राणा' या कला प्राणा वदना की ओर प्रयाण करता है। वह दिन धन्य जिस दिन वह प्रमव पीडा सी अनुभव करता है और निर्माता

शब्द अपना उपसग छोडकर अपने विशुद्ध रूप म, पथ्वी पर स्वग निर्माण करन लगता है।

युग-बाला' अपने अमरत्व के पथ म कला के दोनो रूप देखती चलती है, प्रकटीकरण की कला पर वैभव बरस रहा है—उपहार, सत्कार, पुरस्कार, जय जयकार और सबसे परे सुवण की अनमाँगी बौछार, और निर्माण की कला पेट भर रोटिया ला सकन मे भी असफल। पुत्र-जम पर दरवाजे बाजे और *मकान के एक कोने म निर्मात्री की कराह और कठोर यत्रणा*, मानो अस्तित्व की सासें और उसासें सी हैं और हम हैं कि 'कुछ कहे जा रहे हैं कुछ सहे जा रहे हैं'। भूखे पेट कराहके कहते हैं 'नकदवादी अभिमान', *युग की निर्माण लहरो पर अँगुली उठाकर पुकारत हैं बचपन जमा बलि* दान', किन्तु जिनके मस्तक अपमानित हुए जिन्ह सूलियो पर झुलाया गया, उन्ही की चरण धूलि उन्ही की चिता की धूल पीढियाँ सिर पर *चढाती देखी गयी। रामायण के माग म चाहे जितन गौरव बरस रहे हों* तुलसी के भाग्य से—

> "तीन टूक कौपीन के
> *अरु भाजी बिन लोन*—'

कोई मिटा न सका। ईश्वर न तो भरे हाथो अभाव को वरदान दिया था, किन्तु ईर्ष्या ने निर्माता को तरसा तरसाकर मार डाला और फिर शेष बचे *निर्माण के इस तरह नवाह्न-पारायण करन लगा कि लोग अधमता भूल गये* और आराधक को ईश्वर का अवतार समझन लगे। जहा निर्माता इस तरह तिल तिलकर मर रहा हो वहाँ धन की बरसात और गौरव की खैरात से *कौन कहे कि राजमहलो और राजमार्गों के निर्माताओ जमीन पर या न छा* जाओ बीजो और अकुरो के उगन के लिए और इस तरह जमीन और भू-मण्डल को जीवित रखन के लिए भी जमीन चाहिए। यह जमीन अकुरो की, *फूलो की फलो की बेला की, वृक्षो की और दानो की है—तुम्ह तो इस* पर छान का नहीं इस तक आन ही का अधिकार है।

□

११

जब गद्य व्यक्तित्व ग्रहण करता है

साहित्य का इतिहास ढूढ रहे हो ? वह क्या उठा लाये ? साहित्य-तत्त्व चर्चा के ग्रन्थ ? इन बेचारो मे साहित्य कहाँ मिलेगा ?

य तो बता देंगे कि साहित्य यो पढो, यो जानो। ये चिन्त्य, धारणा-भूषित विधानों की गहरी चर्चा कर देंगे कि ग्रन्थ म रस या हो अथवा यो है। हाँ, ये कभी-कभी रसात्मक वाक्यो का बेजोड चयन भी उपस्थित कर देंगे। किन्तु रस का परिपाक! वह तो सामूहिक पदार्थ ही नही, रस यानी व्यक्ति की जागीर। वह रचना कैसी, जो पाठक को वेदना पटु न बना सके, उसकी रुचि को जाग्रत् और सवेदन-भरी न बना सके ?

एक क्षण एसा भी आता है जब जैसे कवि अन्तरतम की स्फूर्तिया से अपनी-अपनी कला का निर्माण करता है, उसी तरह आलोचक या विवेचक भी मानो निमाण म प्रजननशील-सा होता चलता है। अन्तर के सौन्दय का परिचय ज्यो ज्यो गाढा हाता जाता है, त्यो त्यो विवेचनकर्ता की कलम, प्राणो के रस को अपने म पाकर निहाल हो उठती है। यही आकर आलोचना स्वय निर्माण बनने लगती है। यही आकर वह पाठक से उसी तरह अपना सीधा रिश्ता कायम कर लेती है, जिस तरह एक कहानी, कविता नृत्य, गीत या चित्र किया करता है। ऐसा लगता है, मानो कोई

अनहान ढग से मन मोहिनी कहानी बिना पात्रा की जीभा का सहारा लिये कहता चला जा रहा है और पाठक है कि निहाल होता जा रहा है। विवेचनमयी रचना मे एक अच्छाई हाती है। श्रेय और प्रेय की सावधानी लेन के लिए पाठक को चौकन्ना नही रहना पडता। यही आकर मानो गद्य व्यक्तित्व ग्रहण करता है।



१२

इस निर्माण मे रस कहाँ ?

मैं साहित्य मे मुहफ्ट से डरता हूँ। सूझ का अभाव, निर्माण की पुरुषार्थहीनता, माता मे से वात्सल्य का दिवाला और विवेक मे किसी बिन्दु का मस्तिष्क मे ढीला हो जाना व्यक्ति को, लेखक व्यक्ति को भी मुहफ्ट बनाये बिना नही छोडता।

कुछ लोग हैं जो बहुत ऊँची भाषा बडे मीठे शब्दो मे लिखते हैं, किन्तु उनका पेशा सा हो गया है कि व प्रत्येक साहित्यिक को देवता बनाकर या देवना सिद्ध कर छोडें। इस प्रवृत्ति स प्रत्येक लेखक अपन दानवत्व को छुपान और मानवत्व से लज्जित होने और अपने देवत्व का स्वाग भरने के लिए विवश हो गया है, वह विवश कर भी दिया गया है। क्या इसे श्रद्धा कहते हैं ? श्रद्धा विवक नही छीनती। वह विवेक नही छीन सकती। जुडे हुए हाथो और झुके हुए मस्तको पर धूल की तरह चढी हुई झूठ मानो सत्य स अधिक उज्ज्वल साबित होना चाहती है। कैसा भला-सा होता है रूठना, रीझना और रागात्मक आवेगा का मानव के सजन क्षणो मे परिवतन होन पर किसी रचना म लग जाना। किन्तु देवता की, क्या देवता की आराधना की जाएगी ? दोषो के लिए हुए ईमानदार मानव 'चोरजार शिखामणि' कृष्ण होकर भी प्यार की वस्तु नही है क्या ? वष्णवत्व इसे स्वीकार नही करता। मेरा जी तो कह उठता है कि—

"बृज की रज को परसि कें
पुनि लीजै सिर धारि।
जावा बृजबाला वधू
डारें नित्य बुहारि।।"

दखो, श्रद्धा की रिश्वत पर भी मुझसे प्रेम न छीनो, मैं उसे छोड नही मरूँगा। मैं देवत्व का उपासक नही। भक्ति का माग ही यह रही। मैं विशुद्ध अपने-जसे मानव का और चटखती कलियों चहकत परिंदा और चुम्बनरत समपणशीलता का उपासक हूँ इसलिए कि स्नह का मूलधन पा लेने पर, सिर चढा आन या सिर उतार आने मे पुरुषाथ को कँपकँपी न आवे।

मैं दूसरी खाई म भी बेखबर रहना नही चाहता। यह प्यार के नाम पर शिर दान बढन के बजाय सखी भाव क्यो बढता जा रहा है? यह पहले भी बढा था और हम साहित्यिका न मानव की दुर्गंधि को न जान किन-किन सुगंधित विशेषणो स सजाया था। आज भी हम मानो सखी भाव' के साहित्य-सृजन म गौरव अनुभव करत हैं। यही सखी भाव उतरकर हमारे साहित्य म और जीवन म पीढी की-पीढी को पुरुषार्थहीन बनाये है। हमारी लचक, हमारी नजाकत, हमारी बारीक-ख्याली हमारे आसू हमारी अपने पर अपनो को आशिक कर कर लेने की जादूगरी, मानो व्यास और कृष्ण, अजुन और भीष्म—सबको अपन सभी भाव से हमन झूठा साबित कर दिया। दृढता भरे निश्चय के नत्र और कष्ट की ओर बढाये हुए चरण, मानो स्नह और बलिदान के क्षेत्र मे पूजा के हकदार नही रह गये। देवत्व और सखी भाव की इन आडम्बर और किन्नरत्व स भरी प्रवत्तियो के पश्चात हमारा दावा है, यही हमारे नाम और निर्माण के साथ मानव मनाभाव और मानव जीवन का । जिसपर भिनकें जो प्राण छुवाकर या प्राण क . रस ?

१३

विविध मनोदशा के व्यक्ति

समाज के कमजोर अग हमारे दश म ही नही, विश्व मे याप्त रह हैं।
एक है अभावा मे रो उठनेवाला अश।

दूसरा है परिवतन चाहने की नही और बचकानी मनोदशा रखनेवाला अश, जिस परिणाम की परवाह किय बिना परिवतन चाहिए, जो परिवतन के समय सबसे आगे भले ही हो किन्तु परिवतन के परिणाम भोगते समय या तो वह दुनिया मे न होगा या वह विवेकी बनकर बूढो म शामिल हो जायगा।

तीसरा है, जिसे हर बात मे 'एकार्डिग टू द प्लैन' करन का अभ्याम पड गया है, जो हर बात हर चीज भौतिक भाषा मे सोचता है और एक निरकुश शासन की तरह वह और केवल वह ही व्यवस्था चलने दना चाहता है जो उसकी मरजी की हो।

चौथा है वह अधा उत्साही जिसे आदालनो हलचला और सामाजिक उथल पुथल म शहीद बनने का मौका भर मिलना चाहिए। वह अपन उत्साह स इतना पराजित है कि समाज के भविष्य को सोच सकने का स्वप्न ही वह कभी दख नही सकता जो शहादत के लिए शहादत म विश्वास करता है।

पाँचवाँ है वह अश जिसके अपने कोई विश्वास न कभी रह हैं, न कभी रहगे। वह निणय पर पहुँचने से घबराता है और अपनी एकछत्र आना

सबपर चलाने का मोह छोड नही पाता।

क्रांति क्रांतिवाद की चर्चा करनेवाले दुनिया को स्वग बना डालने के भ्रम के स्वग म विचरण करत है। उन्ह आदत है— हर एक को नीचे गिराओ, हर वस्तु को नष्ट कर दो, हर जगह उलट पुलट से अ यवस्था बनाओ, समाज के हर अग मे एक प्रकार का लकवा सा मार दो—निर्माण फिर होता रहेगा।

जो लोग विश्वास की जडो को उखाड फेंकने का पेशा करते हैं और उसे क्रांति कहते हैं, वे अपन निर्मित उपकरणो से स्वय मारे जाते हैं और समाज को अव्यवस्थित छोड जाते हैं।

जिस समाज ने अपने म अपने परिवारो म, अपन सुहृदो म अपनी सास्कृतिक परम्पराओ म और सबसे अधिक अपन मत निश्चय मत-प्रकाशन और मतानुकूल-वतन म विश्वास खो दिया, उसका कसा देश, उसका कौन-सा साहित्य ? जो राम ईसा मुहम्मद और बुद्ध को उखाडकर फेंकेगा वह क्या, अपन जीते-जी डेमोक्रेसी (प्रजातत्र) मे भी विश्वास जमा पावेगा ? यदि हम किसी मशीन के सब कील कांटे उखाडकर फेंक दें, तो मशीन चलान का काम हम कर चुके !



१४

क्रिया अभागिन तो कटुता की मोहताज है

मुझे लगता है, जिसमे युग की विशेषताएँ और युग का विद्रोह साथ-साथ न उगे, वह युग की उपज ही नही। समय के जय, समय का व्याकरण अथवा समय की परिभाषा बन जाना नही है। समय की यह कमजोरी होती ही है कि एक भला काम करने का सकल्प किया काम तो दूर है तो उसे प्रशसक चाहिए। कितना ही बार तो यह स्पष्ट दीखन लगता है कि युग को सकटो से युग निर्माता बचा रहा है, और निर्माता की रक्षा सहृदय विद्रोही कर रहा है, क्योकि वह झपकिया आन पर आलपीन गडाता है और किसी आईने के सामने खडे होकर अपना मुह निहारकर खुश हान वाले युग के गालो पर एक बहुत शानदार चाटा रशीद करता ह। प्रतिभा और विधायकता चाह तो वहती रह, क्रिया अभागिन तो कटुता की मोहताज है। विद्रोही दो श्रेणी के होते हैं। कुछ कही हुई बातो का विद्राह करते हैं, कुछ बरते हुए जीवन का। 'कहा' क्रिया कभी भी नही थी उसकी प्रतिक्रिया से क्रिया भले ही बनी हो। वह भी कौन साहित्य और वह भी कौन जीवन, जो जान ही नही बे-जाने भी अपने प्रचार की दूकान खोलकर बठ जाय। ज्ञान की भी लोगो ने तिडीबाजिया बना ली। लोग तो रस्सी कूदकर 'हाई जम्प' करते हैं और अपनी पहलवानी दिखाते हैं। ऐसे लाग क्षम्य भी हैं, भले भी हैं। हम समझे कि कुछ लोग खयालो की कूद भी किया करते हैं। ज्ञान से जानकारी ऐसे लडती है कि मुद्दई मुद्दाअलेह क्या

लडेंगे। यही आकर समस्याएँ वलमान' होकर रह जाती हैं। उस विद्वत्ता से बढकर शोक की कौन सी बात होगी, जो अपने सम्पूर्ण प्रयासो म *पीढ़ियो की ओर स आने वाले कल, परसो और उस परम्परा के लिए नही* साच सकी।

कैसे भोले हैं हम। केवल कम्यूनिस्ट को अनीश्वरवादी समझते हैं, यद्यपि ऐसा कहते समय हमे भी कुछ ईश्वर से लेना देना नही होता। कुछ खयाल हमन पीढियो स पडे और सडे हुए उठा लिये हैं, और मौलिक बता कर अणु के नवीन आविष्कारो की तरह उनपर बहस करते हैं। अभी उस दिन एक मित्र बता रहे थे कि एक सज्जन रक्त क्राति की बात सोच रहे *थे और एक महाराजा के कहन स ठीक क्राति के विपरीत उद्योग करन* लग। लोग कहत हैं कि विवेचक का विवेक खो गया है। जिनके हाथ पाँव और किताबें दुरुस्त हैं सोचन की अक्ल भी है, किन्तु बेचारा ईमान गायब है। सब विषयो पर अपना मत, किन्तु स्थिर कही नही। उठाये हुए इरादो का चमत्कार तो दिखा सकते हैं, किन्तु अपना कहने या अपना बनान अथवा वैसी ही वस्तु निर्माण की योग्यता कहाँ है? निर्माण की निपुणता और सहृदयता तो है ही नही, परोसने की कला भी नही जानत और इसी मौलिकता का 'तू मेरी सी कह मैं तेरी सी कहूँ' का समझौता पीठ पर लादे हम बढे चले जा रहे हैं कि विश्व का उद्धार कर छोडेंगे। उपकार की बाढ इतन जोर से दिमाग म आती है कि वस्तु के प्रकार से रहित वस्तु का आकार ही हमारी आज की मौलिकता है।

हमारे कुछ सिक्के हैं—भौतिकवाद, नतिकवाद, रूढिवाद प्रगतिवाद आकपणवाद—। य शब्द हमन भी उपजाय हैं, और य अपनी अधी सूझ के पाँव रखन के लिए बडी अच्छी इटा का काम देत हैं। अभी उस दिन कोई कह रहा था कि अणु के इजीनियर के सामन साहित्यिक को मात खानी पडेगी। हम यदि अपनी शताब्दिया स सचित कायरता को कला कहकर निगारत बैठे रहग तो अवश्य मात खानी पडगी।

हम नाराज न हो। जो कुछ हमन आज की शताब्दी तक कहा है वह पीढ़ियो के लिए पालतू धन बन गया है। वह युग की नित-नयी आध्या त्मिक आवश्यकताओ का ही सामना नही कर सकता वह अणु का क्या

मुकाबला करेगा ? हमारे भाव और तर्क, कर्तव्य और इच्छा, सामजस्य कहा बैठा पाते हैं ? लडको के स्कूलो और कालेजो मे जाइए और बेहिसाब ऊधम देखिए। बस सिर्फ वहाँ ऊधम नही होते, जहाँ ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) पानेवाले क्षेत्रो मे मासिक वेतन मिलते हैं। जहाँ चरित्र का नियत्रण 'रोटी' करती हो, वहाँ किसी को साहित्यिक की आवश्यकता ही कहा है ? जो जमाने को चुनौती देने की भाषा बोलते हैं, वे, श्रीमान, बाद की किसी न किसी फेहरिस्त मे अपना नाम पहले ही लिखा चुके हैं। और वह वाद क्या है ? श्री अज्ञेय ने लन्दन के विद्यार्थियो से, विगत वर्ष ठीक कहा कि 'वाद बूढे हो गये हैं और वे साहित्य मे अब अधिक नही ठहरेंगे। हे भगवान ! वाद अगर चले जायेंगे, तो हमारी प्रतिभा की कुलवधू अपनी मूर्खता को ढाँकने के लिए कौन सी ओढनी ओढकर बाहर आयेगी ? हम गणित से यह तो लेखा लगायें कि पृथ्वी के परिवर्तनो के बीच हमारी विचारशीलता का अनुपात क्या बैठता है ? यही कारण है कि इस या इस जैसे देशो मे जब जेल, कालेपानी और फाँसी का युग रहा, तब सब विचार प्रदाता उस सकट से गायब हो गये, केवल कुछ को छोडकर, और जब सकट दूर तक दिखाई नही देता, तब ऐसे जोर से बोल रहे है, मानो शत्रु की दीवार की ईंट से ईंट बजाकर छोडेंगे। फिर यह शाति और अहिंसा का त्याग भूलकर किया हुआ गुणगान ! लोगो के चबाये हुए को फिर से अपने मुह मे चबाने की प्रतिक्रिया। क्या कहते हैं इस विचारकता के ? कश्मीर मे यदि इनकी सेना बनाकर भेजी जाय या नेपाल की सीमा पर इन्हें याद किया जाय, तो इनके स्वर की अपेक्षा इनकी चूडियाँ ही अधिक आवाज करेंगी। हर नये लडके को देखिए उतावला है कि एक नयी बात कहेगा। कुछ नया, फिर कुछ नया, यह जगत् की अत्यन्त बूढी इच्छा है। इससे बच्चे ही बहलाये जा सकते हैं। विचारकता पथ भ्रष्ट नही हो सकती। जगत मे यह होता भी नही है। हम इस बात पर हँसते हैं कि आकाश के नक्षत्रो से भला पृथ्वी के लोगो का भाग्य नियमन कैसे होता है, किन्तु सिद्धान्त रूप से प्रकृत रूप से तो आकाश की दूरी तक गये बिना ही जाने कौन कौन व्यक्ति और वृत्तियाँ हमारे जीवन की बूझ और अनबूझ पहेलियो का नियमन किया करती हैं। कहते हैं एक मित्र ने महात्मा गाँधी के सामने शपथ ली कि वे ब्रह्मचर्य का

पाला करेंगे। बहुत बड़े मिन्न है व और परिणाम यह हुआ कि ठीक दस महीने बाद उनके यहाँ सन्तान पैदा हुई। मैं इस बात से नाराज नहीं हूँ, क्योंकि यह तो मनुष्य-सुलभ है, मैं प्रतिभा की प्रतिभाहीनता से दुखी हूँ। जीवन अपनी कमजोरी और कठिनाइयों को लेकर धीरे धीरे चलता है। हम चाहे जितनी जल्दी करें हो, उम्र, मौसम, फसल और जीवन की जल्दी नहीं पड़ी होती। हम अपनी कठिनाई पर कानून बनाते हैं। कानून, कानून की पुस्तकों में लिखे पड़े रहते हैं। अधिकार मिला है, दौड़कर कानून बना डालते हैं। इसलिए नहीं कि कानूनों से समस्या सुलझ जायगी, किन्तु इस लिए कि आध्यात्मिकता की ओर लौटने में झेंप जो लगती है। कहाँ बूढ़ी आध्यात्मिकता और कहाँ तरोताजा हम! गणित में, विज्ञान में, इतिहास में, सब जगह प्राचीनता से नवीनता तक देखेंगे, केवल दर्शन और साहित्य में हम झेंप लगती है। नतीजा यह होता है कि जैसा हम लिखते हैं वैसे आदमी ही नहीं पैदा होते और जैसे आदमी होते हैं, वैसा हम लिखते भय भीत होते हैं।

प्राचीन या अर्वाचीन साहित्यिकों द्वारा लिखा हुआ कोई कोई कथा चरित ऐसा बलवान होता है कि वैसा चरित्र नायक भविष्य में जब भी पैदा हो जावे परिस्थितियों को सुलझा या उलझा सकता है। हम ऐसे कथापात्रों का बल नहीं बढ़ाते। हम बलवान चरित्र पात्रों को जन्म देने के बजाय खिलौने की प्रजनन क्रिया में लगे हुए हैं। कार्टून पैदा होते हैं और चाहते है कि जमाना इन्हें इतिहास के पात्र कहे। हमारे आज के कपिल और कणाद क्या यही सब नहीं कर रहे हैं?



१५

साहित्यिक की मूर्तिपूजा

खडी बोली द्विवेदी युग म हमारी भाषा के उस रूप का नाम रहा जिस हम आज गद्य और पद्य के लिए उपयोग म लाते है किन्तु खडी बोली नाम मुझे कुछ अच्छा नही लगता। मेरे विचार से तो खडी बोली उस प्रश्न-वाचक स्वरूप का नाम होना चाहिए, जिसे हम प्रखर रूप मे पूछ रहे हो। मो आज ऐसी ही खडी बोली म कुछ बाते रख सकू, तो मुझे प्रसन्नता होगी, परन्तु बहुत सन्देह है कि मेरे-जैसा अतिसुख और अतिदु ख दोनो स भयभीत रहनेवाला आदमी अपने आदमियो स ऐसे प्रश्न पूछ भी सकेगा ?

साहित्य को स्वैर सचार करन की इजाजत न किसी युग म रही होगी, न वतमान युग मे मिल सकती है। क्या साहित्य ऐसी अवस्था बन ही नही सकता जिस मिलकर रहने की कला कहा जा सके ? क्या आज वह समय की तान म अपनी तान मिलाकर अनुभव प्रकट करनेवाला उपकरण बनन के अयोग्य है ? तब तो लोगो के सम्मिलित स्वार्थो का विश्वास उसपर रखा ही न जा सकेगा और एक दूसरे के लाभ के लिए सामाजिक नियत्रण की किसी व्यवस्था को स्वीकार करन की क्षमता भी उसम देखी न जा सकेगी। वस्तुओ का विश्व म निर्माण बढ रहा है। उनका आवागमन सीमा रहित होना चाहता है। हवाई जहाजो के उडन तक मानव-जीवन म यात्रा अवश्यम्भावी हो गयी है। एक देश का नागरिक दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण करने के लिए उतावला हो रहा है। भाई चारा, शिष्टाचार व

लाचारी अथवा तीनों से मिलकर सुदूर देशों तक मानव अपने रिश्ते कायम कर रहा है। और हृदय और मस्तिष्क को सम्मिलित कर आपस में एक दूसरे का विश्वास दिलाया जा रहा है कि मानव को और विश्व को ईमानदारी को जीने के लिए अभी जगह है। इस आधार के फैलने के लिए विस्तार मात्र फैल गया है और बढ़ता जा रहा है। क्या इस अवस्था तक फैलने के लिए साहित्य आज अपाहिज हो गया है? लोग यह कहते सुने जाते हैं कि प्रजासत्तात्मक शासन प्रणाली भी कहीं अमीरों का नखरा बनकर न रह जाय। जरा साहित्य भी अपनी तरफ देखे कि वह कुछ अमीरों का नखरा तो नहीं है। जिस तरह प्रेम पर विश्व की राग पराजित कामिनी से लेकर नारद के भक्ति-सूत्र में वर्णित शास्त्र तक सबका अधिकार है क्या साहित्य उतना ही लाचार हो गया है? उनका अपना कोई बल नहीं? फिर वह बलवान पत्र कला कैसे बनेगी, जो शासन का नियन्त्रण कर सके वह कोमल सूत्र कसे बनेगी, जिसमें पृथ्वी के देशों की सीमाओं का अन्तर मिटता-सा नजर आयेगा याने वह समझ का पुल बनकर विश्व भर में फैल सके? वह मानव जीवन की आवश्यकता कैसे बन सकेगी कि जिसे पद पद पर शिशु-मानवता रक्षाकारिणी माँ की तरह पुकार सके? साहित्य के घेरे में अजायब घर की तरह हमारे पास पालतू चीजें बहुत हो गयी। अब स्वतन्त्रचेता खयाल को स्वागत के साथ नहीं, हमसे लड़कर ही हमारे बीच आना पड़ता है, बहुत डरते डरते। तब विश्व से, विश्व की पराजितता से, विश्व की अनुदार प्रतिक्रियात्मकता से लोहा लेनेवाली पीढ़ी हम कम पैदा कर सकेंगे?

जगत के साधु अगर यह कहते आये हैं कि मनुष्य जन्मतः अच्छा है, तो वे यह भी कहते आये हैं कि उसकी प्रारम्भिक प्रवृत्तियाँ पशु प्रवृत्तियाँ हैं इसलिए चाहे व्यक्ति हो चाहे समाज हो चाहे साहित्य हो चाहे राष्ट्र हो, हम अच्छा करते हैं जो उसपर आँख मूँदकर विश्वास नहीं करते। संघर्ष ही में प्रतिभा को बल मिलता है मनुष्य श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर होता जाता है किन्तु साथ ही हम उन्नततर सामाजिक व्यवस्था की चाह में शासन की संस्थाओं को न्याय की संस्थाओं से अलग करते चले आ रहे हैं। क्या साहित्य में भी हम इस अलगाव का स्मरण रहता है? लेखक और आलोचक मानो दो श्रेणियाँ-सी बनकर हम बैठ गये हैं। मन प्रकटीकरण मत निश्चय मन-

छोड सकते । चितक का खयाल आगे होता है, आविष्कार पीछे पीछे । इस लिए पीढी की, पीढियों की उद्दण्ड आशाओ पर चढकर खयाल आते हैं और आविष्कारो को जन्म देकर मानव कही बिलम स जाते हैं जैसाकि किसी न कहा है, "आज का साहित्य कल का आविष्कार है।" चिरतन मानव को भी कभी कभी विनोद सूझता है। सदैव आपस म गाली-गलौज करनवाले पचास आदमियो को वह छाँट देता है जो अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए सदा झगडते हैं, और एक-दूसरे पर विश्वास नही करते, किन्तु इकट्ठ हाकर वे विश्व बन्धुत्व का स्वाँग भरन लगते हैं। प्रजा सत्ता का धनी चाह जा कहता रहे खयालो का धनी इसे जीवन का बचपन मानता है और मानता रहेगा।

कस भोले हैं हम ! अभी परसो भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जेला मे थे। उस समय हाथ से रस्सी बटते थ, तो लोगो को छाले दिखात फिरत थ कि हम कितना कष्ट ह। फिर महायुद्ध आया और अभी कल-परसो मिस्र और हगरी मे भी चढाइयाँ हुइ। जिनका अपन हाथ म छाला दुखता था वे टुकुर-टुकुर देखा किये कि इन्सान को इन्सान न मार डाला। इन्सान के बनाये चित्र सुरक्षित हैं, साहित्य के सग्रहालय हैं, मूर्तियो पर शोध हो रहा है, खण्डहर पूजे जा रहे है और कराहने और मरनेवाली मानवता मानो समय के झाड़ू स अनन्त के गर्भ मे फेंक दने की चीज है। क्या-साहित्य मनुष्य से इतनी ही दूर रहना चाहता है ? कृषि-युग म वह राजा राज्य से इतनी दूर नही रहता था, भविष्य के युग म भी नही रह सकेगा। तृतीयत्व को प्राप्त आज ही के साहित्य मे यह सम्भव है।



राष्ट्र-जीवन की सफलता का माप इस बात से जाना जा सकेगा कि उस राष्ट्र ने अपनी प्रजा के विचार जीवन म, नैतिक बल म, बौद्धिक आनद मे और मानव-जाति को धार्मिक समाधान और कल्याण का मार्ग सिखान म विचारो की कौन सी किस्त इस पीढी म चुकाई है ?



१७

यथार्थ का अयथार्थ

हम ऐसे हैं ही कहाँ, जो 'यथार्थ' के अयथार्थ से, साहित्य में पिण्ड छुड़ा सकें? 'स्वगत' में मौलिक कोई चीज हुई नहीं और जगत् में मौलिक हमने मानी नहीं। अब वह दिन दूर नहीं, जब हमारी सूझहीनता को हम अपनी सबसे बड़ी मौलिकता कहने लगेंगे।

युग से डरना या, उससे भयभीत होना क्या हमारा कैसा स्वभाव? आज के आलोचक को जब मैं अपरिपक्व आयात प्रियता की प्रशंसा करते और प्राचीन तथा नवीन भावनापूर्ण मौलिकता पर कीचड़ उछालते या कम-से-कम उसकी उपेक्षा करते देखता हूँ, तब मुझे अपनी पीढ़ी से यह कहने की इच्छा होती है कि तुमने साहित्य-पारखियों के नाम दे दी 'आयातों जिन्होंने अपने बुद्धिरथ से जन हैं? उनमें सत्सूबी माल में लगाकर आज तक के युग पर मन क्या माँगते हो? उन्हें पता है कि नए जमाने के 'कविवर पाठिका' में से कुछ का पढ़ना ले जाना, कुछ को ठुकरा देना। और भावों के अन्दाज-भाव में भावों को अंग्रेजी जूठन के इन नक्शों जिन्हें हम आलोचनाएँ कहते हैं, क्या बुरी? जब पता नहीं मिलता, तब गले पाठकों को घास ही खिलाना पड़ता है। बच्चे का खाना गाय जब घास खाकर दूध देता है, तब रुचि के गर्व थोड़े उत्तर या उनके भाई-बन्द घास खाकर बड़ा नहीं रह सकते।

व्यास हो, वाल्मीकि हो, होमर हो, अरस्तू, शेक्सपियर हो, हो—किसी ने इतिहास नहीं लिखा, कोई इतिहासकार नहीं था।

पात्रा का पूजन भले ही लगे किन्तु उन्होंने निर्माण के दोनों अमर तत्त्वों से काम लिया है। उन्होंने 'व्यक्ति ऐसा है' को भी लिखा और उसमें 'व्यक्ति ऐसा होना चाहिए और व्यक्ति ऐसा हो सकता है' को भी मिला दिया। सच तो यह है कि अपने स्वप्न के मानव को मिलाये बिना किसी कलाकार की मानव प्रतिमा, चाहे वह नायक की हो या खलनायक की, परिपूर्ण नहीं होती। हमारे निन्दा और स्तुति के आरोप तो सूर्य पर चढ़ायी अंजलियाँ अथवा फेंकी हुई धूल की तरह हैं—वे जो अपना प्रसाद अपने ही लिए बन कर लौट आती हैं।



१८

लेखक अत्यन्त अरक्षित है

आज साहित्यिक के पैरों की जमीन सुरक्षित नहीं है। वह रह भी ता नहीं सकती। मीठे स्वप्न पुराने पड़ गये हैं। इसलिए नहीं कि उनके स्वप्नों का माधुर्य समाप्त हो गया है, किन्तु इसलिए कि हम विश्व की उथल-पुथल के नवीन तत्त्वों का माधुर्य उनमें नहीं जोड़ पाते। कहा जाता है कि राज-नीति ने भिन्न भिन्न देशों में उथल पुथल मचा दी है और विश्व के शान्त चिन्तन को कठिन कर दिया है। इस अर्द्धसत्य पर विश्वास करते समय हम यह क्यों नहीं सोचते कि मार्क्स और फ्रायड दोनों ही चुनाव लड़नेवाले राज नीतिज्ञ नहीं थे कि जिनके चिन्तन से प्रभावित होकर हमने अपने जीवन और साहित्य के संघर्षों के लिए नये मोहरे जमाये हैं और नये पासे फेंकना प्रारम्भ कर दिया है। सच तो यह है कि चिन्तक और साहित्यिक विचार दान करते हैं और उनके प्रभाव से विश्व के संघर्ष जागरित हो जाते हैं, विरोधों में पार्टियाँ पैदा हो जाती हैं। तब चिन्तक अपने ही विचारों के उन परिणामों से घबड़ाने लगते हैं। यह तो अशोभन है।

यह कैसे सम्भव है कि उस समाज के विश्वास आज का साहित्य कह-लाने रहे जो आज अस्तित्व में ही नहीं है और जो समाज अस्तित्व में आ गया है, वह विचार दान की क्षमता खो बैठे। कृत्रिम ढंग से पुराणे वस्तु संग्रहालय में रखे जाने योग्य इरादे भी मूर्तियों, चित्रों और पुस्तकों की तरह हमारी सभ्यता के इतिहास के अंग हों वे हमारे समाज की सपूर्ण संस्कृति

नही कहे जा सकते। किन्तु यह अभिशाप हमे 'धडवादी' और 'सिरवादी' साहित्यिक देता है। वह वस्तु को टुकडे करके देखता है, सम्पूर्ण को एक करके नही देखता। परिणामत वह अपने निर्णयो मे अर्द्धसत्य-से प्रकट करता है, जो कभी सम्पूर्ण सत्य से दीखने लगते हैं और कभी सम्पूर्ण असत्य साबित होकर रह जाते हैं। लोग कहते हैं जीवन की भयकरताओ से साहित्य को बचाना आवश्यक है, उसे शान्ति चाहिए। उसे व्यभिचारी और चोर का-सा एकान्त चाहिए। एकान्त मन की सतह का कहते हो तो वह अनिवार्य है, और वह साहित्य के चिन्तक से कभी दूर नही होता किन्तु यदि वह उसकी पलायनवृत्ति है तो उसका एकान्त का स्वाँग भरना भी उसके लिए भय का कारण हो सकता है। या तो भविष्यवाणियो के दिन बहुत दूर चले गये, किन्तु ज्ञान की साधना, विवेक की क्षमता रस के सौष्ठव द्वारा भाव के *ईमानदार प्रकटीकरण के युगो मे भविष्यवाणियो के लिए अधिक गुजाइश* नही रह गयी। यह तो बिलकुल सम्भव नही है कि राज्यो की सीमा रेखाएँ टूट रही हो, अनन्त नरमुण्ड सघर्षरत हो और लोगो का प्रेयसी का रस-दशन ही समाप्त न हो। कुछ 'नवीन' चाहिए, यह अपने मे बहुत 'पुरानी' इच्छा रही है और नवीनता की इच्छा के बाद घटनेवाली घटनाएँ भी अब मानो बासी पड गयी हैं। अब तो घटनाएँ पहले घटती हैं और सोचनेवालो की लाचारियाँ पीछे आती हैं। प्रश्न यह है कि हम नवीन घटना से सुलझें या नवीन उपमा से सुलझें? उपमा और घटना मे आपस मे कोई वैर नही है, किन्तु उपमा वस्तु को मधुरता से समझाने का मार्ग सुलभ करती है और घटना तो स्वय समस्या है जिससे मनुष्य विरत होकर जीवित नही रह सकता। व्यास का कृष्ण और वाल्मीकि की सीता किसे नही भाते? कौन माता है जो अपने पुत्र को कृष्ण जैसा सोलह कला-सम्पन्न जगदीश्वर नही चाहती, और कौन पिता है जो शताब्दियाँ बीत जाने के पश्चात् भी वाल्मीकि द्वारा प्रदान की हुई सीता के सतीत्व को अपनी पुत्री पर नही डालना चाहता?

लोग कहते हैं कि 'जानने की इच्छा और 'प्रकट करने की लाचारी' के बीच विश्व का साहित्य प्रभावित होता चला आ रहा है, किन्तु आज के मनस्वी के सम्मुख सामाजिक जानकारियाँ समस्या बनकर आती हैं, जो केवल प्रकटीकरण से नही सुलझती। अत आज के साहित्यिक के लिए जान-

आग जानेवाले महान के सकटमय वरदान तो उसकी वाणी के द्वारा उसका वाणी के द्वारा ही व्याप्त हुए हैं कि जिन अथवा जैसी वाणियो की छाया लेकर विश्व की लेखनिया न जीवित रहना और पीढियो का जीवित रखना सीखा है। भला कौन माता यह देख सकेगी कि उसका निर्माण कष्ट पा रहा है? कौन निमाता यह देख सकेगा कि उसके द्वारा निर्मित युग की पीढी उसका लिखावटा के पथ पर चलकर यन्त्रणा भोग रहा है। माता का यह स्पन्दन निर्माता म होना है जीवन म यह सम्भव नही।

लोग लेखनी के भी मजदूर-सघ बनाने लग हैं। मैं विडम्बना इसलिए नही मानता कि लेखन जसे देवत्व मे मजदूरी के लिए अवकाश नही है। मैं लेखनी की धनिकता पर गर्वित नही हूँ। कठिनाई ता यह है कि जीवन का मजदूर यदि आठ घण्टे काम करता है, ता लेखनी के मजदूर के चौबीसा घट बरबाद होते है। जब मजदूर आठ घण्टे काम करने के बाद विश्राम कर रहा हो तब उससे काम लेना अपराध माना जाता है और स्वतन्त्र देशो मे उचित हो उसके विश्राम के क्षणो म काइ उससे छेडछाड नही कर सकता कोई उसके आराम म खलल नही डाल सकता। किन्तु लेखनी का मजदूर किसी कार्यालय गद्दिया सिनेमा राजाश्रय समारोह के रात्रि जागरण अथवा लेखन की मजदूरी म लगा होता है तब उस मजदूरी से छूटने के बाद क्या कला और कलम को भी वही विश्राम मिलता है जो एक मजदूर को मिलता है? कला और कलम का धनी साना चाहता है किन्तु कल की मजदूरी पर उसे जो कुछ व्यक्त करना है उसके प्रकटीकरण की लाचारी जो रखन कर माँग रही है, उसे अध्ययन अभ्यास या रियाज का भोजन कब दिया जाय? रोटी कपडा नारी बच्चे और सुख की इच्छाए समय की घडियो की खूटियो पर टँग म हैं। सो लेखनी के धनी का जीवन तो दया पर जीने का जीवन है।

दया का आडम्बर हम चाहे जैसा करें, किन्तु दया तो बडा ही छोट पर करता है सा...कर अपाहिज पर ही करता है। दया, ...र के स... स्वरूप का ही कहते हैं। मजदूर अधिकार स माँ... अ... मानकर उस दिया जाता है किन्तु लेखनी का ... प... हो, तो दया के वातावरण म वह जीता है।

न अन्य सब समाजों की तरह लेखन में भी दम्भ और असत्य है म और असत्य का समर्थन नहीं कर रहा मैं केवल लेखन की बात न रख रहा हूँ।

पर यदि लेखक क्रान्ति द्रष्टा क्रान्तिकारी हुआ तो उसकी और भी जटिल हो जाती है। एक क्रान्तिकारी तो समाज में छुप काम चला ले जाता है। उसके प्राण उसके वस्त्र उसके शस्त्र के बीच भी उसकी सब सुविधाएँ सुरक्षित हैं किन्तु क्रान्तिकारी क्षण क्षण अपना लेखनी द्वारा अपनी नीयत का स्पष्ट इजहार लिए लाचार है इसलिए उसकी रक्षा उतनी सुरक्षित नहीं हो नी एक क्रान्तिकारी की होती है।



२०

हमारे गाँव और उनके शिक्षक

गाव भारत के प्राणो का नाम है और उसके दुर्भाग्य का भी। अन्ध विश्वास और भाग्यवाद वहाँ सदव खिलवाड करते है क्योकि ग्रामीण अपने को मिलनवाले कष्टो का कारण ज्ञान के अभाव मे अपने से भिन्न कुछ घटनाओ को मानते है। अपने दु खो से झगडने के लिए उन्होने भाग्य नामक वस्तु को बडा भारी सहारा बना रखा है। यो तो जो लोग विश्व के ज्ञान से अधिक प्रभावित और परिचित होने के बजाय स्वय अपने ही विषय मे अधिक सोचा करते हैं, जो अपनी जरूरतों को उम्र की साँसो के वेग से बढाया करते और लगातार लेखा रखते हैं जो अपने ही बडप्पन की एक तस्वीर अपने मन की जेब मे रखकर उन लोगो द्वारा बडे न माने जानेवाले दिनो की जन्मपत्री बनाये रहते हैं जो इस बात की अधिक परवाह करते हैं कि उनके विषय मे और लोग क्या कहते हैं जो इस बात का हिसाब रखते हैं कि किस किसने कब कब हमारा सम्मान नही किया, जो धन और कीर्ति की दूकान चलाकर भी, हृदय की काम [illegible] पर दु खका [illegible] खजाना अपने पास नही रखते, उनसे बढकर [illegible] द ही क [illegible] हमारे ग्रामीणो की तो यह हालत है कि [illegible] धना [illegible] यापन करते हैं जितने पर ससार के [illegible] न कर सकता हो, और तिसपर भी लो [illegible] यह कह रहे हो कि [illegible] लोग सुखी हैं

हमम जागरूकता आये, तो इससे बढकर पूजा दूसरी हो नही सकती, क्याकि पहले तो हमे यह दिखाना है कि ससार के किसान किस तरह रहते हैं और भारत के किस तरह। फिर यह कि बाहर कही से हमारे द्वार पर सौभाग्य नही आयगा, किन्तु हमारा ही आज का पुरुषाथ स्वावलम्वन की गोद म बैठकर कल का सौभाग्य बन जावेगा।

गाँवा के शिक्षका की जिम्मेवारी बडी है, किन्तु हम प्रशसा करके ही शिक्षका का सन्तोष न दे। हम अधिकाधिक ग्रामसेवा के साधन उन्ह दें और उनके पास एसा ज्ञान पहुँचायें, जो उन्ह ग्रामसेवा का दिशादशन करा सके। हम ऐसा साहित्य दें, जो ग्रामीणो के साथ बोलता सा और उनके कष्टो, जरूरतो, त्याहारा और उत्सवो म घुल मिल जाता-सा नजर आये।

हम एक बात ग्रामीणा मे लगातार बोते रहे जिस तरह ग्रामीण खेत बोते हैं, कि इस देश के वे ही आधार हैं और उनके सिर से बहनवाली पसीन की बूदो की पवित्रता गगा से अधिक है और उनके बदन पर लिपटी हुई मिट्टी भगवान् कृष्ण के द्वारा खायी जानेवाली व्रजधूलि से कही मधुर, कही प्राणदात्री है।



२१

दीपक के गर्व का दिन

लाग कहते हैं 'वीरा का हर दिन त्याहार है।' कुछ लोग इस प्राचीन ऋचा को थोडा सा परिवर्तित कर कहते है—"उत्सवप्रियाहि देवा।" हो शायद। हमे तो ऐसा लगता है कि यदि हमारा हर दिन त्योहार होता तो हम त्योहारो से भी उसी तरह ऊबने लगत जिस तरह जिन्दगी के काई कोई साधारण दिना से ऊब उठते हैं।

दीवाली आ गयी है। घर घर दीय जलेंगे, जो दीये जला सकता है, उनके घर भी, जो नही जला सकता है उसके घर भी। मानो आज मनुष्य अधकार से लडने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होता है। यह त्योहार स्वागत करता है—*तारा का, चाद का सूरज का भी। आज मानो दीपक के गव का दिन* है कि वह अपने क्षणिक प्रकाश के तारे की आरती बन सका है।

कहते हैं एक साम्राज्यवादी नरकासुर था। सोलह हजार गोपिया उसकी यत्रणा म थी। प्राग्ज्योतिष याने आसाम के पूर्वोत्तर किनारे पर वह कही रहता था। श्रीकृष्ण की पत्नी सत्यभामा ने कहा कि मैं उन सोलह हजार गापिया का उद्धार करूँगी, सहायता तुम करना। यह मुनीमी करन का श्रीकृष्ण का पुराना स्वभाव था। अर्जुन न भी उन्हे युद्ध नही करन दिया, *सिफ मुनीमी का ही काम दिया। सो भारत की एक रानी न नरकासुर दत्य* का वध किया चतुर्दशी के दिन। इसीलिए अमावस्या का हष मनाया जाता है।

दीपावली मे अधकार से लडेंगे। दीए जलाएग। वर्षा का कीचड सूख जायगा। लाग राग मुक्त होग। इस वष की पहली फसल का अनाज आयेगा, हमारे घर उजियाले हा जाएँगे, लक्ष्मी भर जायगी और बही-खाता की उलट फेर मे कज का बाम उतरेगा और हम त्योहारा का सुख अनुभव करेंगे। गरज यह है कि हम दीपावली मनाएँगे—बूढे, बच्चे जवान, नर और नारी मिलकर।

गायें पूजी जाएँ, बैला के जुलूस निकले, जगत् रगीन बने और नये अन्न का पकवान बनाकर अनकूट बनायें। इस तरह हमारी दीवाली मने।

बच्चा क गाला पर, उनके उपद्रवो पर, तरुणो के नेत्रो म और उनकी मुट्ठी-बँधे सकल्पा मे अधेडो के दिशा-दशन म, बलि मे, बल मे, वृद्धो की लाठी म और उनके आशीर्वादो म आकाश के तारा से लेकर जमीन के दीपक म जा लौ जगमगाती रहे उसका, उसकी दीपावली का स्वाँग है।

त्योहार हमारी शक्तियो का वह उल्लासपूण विश्राम है, जिसम हम मानवता के शत्रुआ स जूझने के लिए बलि एकत्र किया करत हैं, बल एकत्र करते हैं।



२२

वर्षा की प्रथम बौछारें

सूरज तपकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति दिखा रहा था। जवानों की जिन्दगी झुलसी सी दीखती, बूढ़ों की 'हाय राम' कुहराम बनी रहती। बच्चे ऋतु को लात मारकर सड़कों पर लपटों में खेलते तो लू लेकर लौटते काम के घंटे उगलती आग ने बेकाम के घंटे बना दिये थे। और बरसात आ गयी।

अखबारों में पढ़ रहे थे, वर्षा का मौसमी पानी लंका से चलकर, केरल प्रदेश से गुजरता हुआ कालीकट होकर, कोंकण तक आया है। कोंकण से बम्बई तीन दिन और बम्बई से यहाँ (खण्डवा) सात दिन यानी तारीख ९-१० जून को वर्षा आयी समझो। जो जमीन के इतने निचले समझकर कि आसमान को देखना भ्रम समझें, वे भी दिन और रात आकाश में बादल के टुकड़े ढूँढ़ते। दिनों की, समय की दूरी के लिए बिना ठहरे कल जोर की बरसात आ गयी। 'लोकल रेन है', विशेषज्ञों ने बीमारों से कहा। 'पानी है बरसात है' जन-जन ने कहा। वर्षा का स्वागत। वह जो ठेला-कुली जा रहा है, वह चाहता है कि ठेले का माल न भीगे किसी ओट की शरण ढूँढ़ रहा है ठेले को लिए। किन्तु स्वयं किस चाव से बरसाती बूँदों में नहा रहा है। दो आने घंटेवाले साइकिल-सवार उड़ते वस्त्रों और उछलते पहियों सिनेमा के गीत इस मजे से गा-गाकर अघट की उपेक्षा कर रहे हैं मानो बरसात पा ली, सब कुछ पा लिया।

आँखों में पुकारें जा रहा है किन्तु ध्यानरथ-सा उन्हें मूँदकर, बूँद-बूँद

बरसते वरदान का चाव से आगमन मनाया जा रहा है। आखा को बिजली की चमक और काना को बादरा की कडक, कैसी भा रही है मानो वीणा, मद्य किसी का इस शातल स्वप्न के साकार होने के समय मदाखलतबेजा' करने का अधिकार नहो है। बस यही गरज, यही घुमड, यही टपन्टप, यही ठहर-ठहरकर मचक्रियां-मा लेता अघड और यह घर के वस्त्रो और वस्तुओ और नारी नर क मन और विश्वासो को आन द-आभार और वर्षा के ज्वार स औधा-सीधा करता व्यापार चाहिए। मुह खुलता है कि कसी बुद्धि और वसा नान राशि के पुण्यकलेवर को लाघकर कुदकिया और किलकारिया मानो फूटकर निकल पडना चाहती हैं। वे सब चुहुल, जि ह अपनानेवालो को हम चश्मा चढाय, चश्मे क कुछ बाहर और कुछ भीतर से झाकते—शोहदापन कहत थ, अब अपनी ही तबियत मे बरबस उगे उठते हैं। कैसा प्यारा सुहाना है मौसम! कसी न ही न ही पर विस्तत सुकुमार विश्वासो सी हैं बूदें! गर्मी को बिदाई दन री याद ही नही रह रही, बरसात का स्वागत कौन करे बहोशी जा है।

यदि आकाश के बादलों के पृथ्वी की आर होनेवाले इसी बरसात आकषण के कारण श्यामला भूमि को हरी हरी कर डालनेवाले लोगा ने कृपक नाम पाया था, तो अन त आ 'न द' क पुत्र न भी इ ही बादला से श्यामता क्या न ली होगी। इ ही से रण कौशल, इ ही से बरस पडना, इ ही से छा जाना, इ ही स उग उठना, इ ही से हरा हरा कर डालना और फूलो म भर और फला स लाद देना क्या न सीखा होगा! और इसीलिए क्यो न इसी आकपण के अनुकरणशील साधक, उस बाँसुरीवादक को, अगजग न कृष्ण कहकर मस्तक न झुका दिया होगा?

अहा फिर फुहार आयी, यह गरज, यह बरस! तडप बेचारी बिजली के मधुर उत्पादा और बादल की हुकारो मे जा छुपी। और फिर पानी पानी पाना।

कैसी मनमाहिनी परेशानी है, दुनिया गीली है दुनिया तपन क बीचो-बीच थरथरा उठी है कि तु कैसी मस्तानी है!

बरसात! तुम्हारा स्वागत।

और लीजिए वे नाच उठे किलकारी नरेश। नाच उठे? दौडना है,

२२

वर्षा की प्रथम बौछारें

सूरज तपकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति दिखा रहा था। जवानों की जिन्दगी झुलसी सी दीखती, बूढ़ों की 'हाय राम' मुहराम बनी रहती बच्चे ऋतु को लात मारकर सड़कों पर लपटों में खेलते, तो लू लेकर लौटते शाम के घट उगलती आग न बेकाम के घटे बना दिए थे। और बरसात आ गयी।

अखबारों म पढ रह थ, वर्षा का मौसमी पानी लका से चलकर केरल प्रदेश से गुजरता हुआ कालीकट होकर, कोकण तक आया है। कोकण स (बम्बई तीन दिन और बम्बई से यहा (खण्डवा) सात दिन यानी तारीख ९ १० जून को वर्षा आयी समझो। जो जमीन के इतन चिपले समथक कि) आसमान को देखना भ्रम समझे, वे भी दिन और रात आकाश म बादल के टुकडे ढूढते। दिनों की, समय की दूरी के लिए बिना ठहरे कल जोर की बरसात आ गयी। 'लोकल रेन है', विशेषज्ञ के बीमारों ने कहा। 'पानी है बरसात है जन-जन न कहा। वर्षा का स्वागत। वह जा ठेला कुली जा रहा है वह चाहता है कि ठेले का माल न भीगे, किसी ओट की शरण ढूढ रहा है ठेले के लिए। किन्तु स्वय किस चाव से बरसाती बूदों म नहा रहा है। दो आने घटेवाले साइकिल-सवार उडते वस्त्रो और उखडते पहियो सिनमा के गीत इस मजे म गा गाकर अधड की उपेक्षा कर रहे हैं माना बरसात पा ली, सब कुछ पा लिया।

आँखो म फुहारें जा रही हैं किन्तु ध्यानस्थ से उन्ह मूदकर, बूद-बूद

बरसन बरसान का चाव से आगमन मनाया जा रहा है। आखो को बिजली की चमक और कानों को बादल की मडक, कैसी भा रही है, मानो वीणा, मदग किसी को इस शीतल स्वप्न के साकार होन के समय 'मदाखलतबेजा' करन का अधिकार नहीं है। बस यही गरज, यही घुमड, यही टप-टप, यही ठहर-ठहरकर मचकिया सा लेता अधड और यह घर के वस्त्रो और वस्तुओ और नारी नर के मन और विश्वासो को आनन्द-आभार और वषा के ज्वार म औंधा-सीधा करता व्यापार चाहिए। मुह खुलता है कि कसी बुद्धि और वमा गान राशि के पुष्कलेवर को लाँधकर कुदकिया और किलकारियाँ मानो पूरकर निकल पडना चाहती हैं। वे सब चहुल, जिन्ह अपनानेवाली को हम चश्मा चढ़ाय, चश्मे के कुछ बाहर और कुछ भीतर से झाकते—शोहदापन कहते ध अब अपनी ही तबियत म बरबस उग उठन हैं। कैसा प्यारा सुहाना है मौसम! कसा नन्ही-नन्ही पर विस्तत सुकुमार विश्वासो सी हैं बूदें। गर्मी की बिदाई दन की याद ही नही रह रही, बरसात का स्वागत कौन कर बहोशी जा है।

यदि आकाश क बादलों के पथ्वी की ओर होनेवाले इसी बरसात आकपण क कारण श्यामला भूमि को हरी हरी कर डालनेवाले लोगा ने कृषक नाम पाया था, तो अन त आ 'न द' क पुत्र ने भी इन्हीं बादला से श्यामता क्या न ली होगी! इन्ही स रण कौशल, इन्ही से बरस पडना, इन्हीं म छा जाना, इन्ही स उग उठना, इन्ही स हरा हरा कर डालना और फूलो स भर और पन्ना स लाद देना क्या न सीखा होगा। और इसीलिए क्या न इसी आकपण क अनुकरणशील साधक, उस बासुरीवादक का, अगजग ने कृष्ण कहकर मस्तक न झुका दिया होगा?

अहा, फिर फुहार आया, यह गरज, यह बरस। तडप बेचारी बिजली क मधुर उन्माद और बादल की हुंकारा में जा छुपी। और फिर पानी पानी पानी।

कभी मनमोहिनी परशानी है, दुनिया गीली है, दुनिया तपन के दीन्धा-बाद परपरा टूट है किन्तु कसी मस्तानी है!

बरसात! तुम्हारा स्वागत।

और भाग्रिए व नाच उठ बिनकारी नरेश। नाच उठ? डोलना है,

२२

वर्षा की प्रथम बौछारे

सूरज तपकर अपनी सम्पूण शक्ति दिखा रहा था। जवानो की जिन्दगी झुलसी सी दीखती, बूढो की 'हाय राम' कुहराम बनी रहती बच्चे ऋतु को लात मारकर सडको पर लपटो म खेलते तो लू लेकर लौटते काम के घट उगलती आग ने बेकाम के घटे बना दिये थे। और बरसात आ गयी।

अखबारो मे पढ रहे थे, वर्षा का मौसमी पानी लका से चलकर, केरल प्रदश से गुजरता हुआ कालीकट होकर, कोंकण तक आया है। कोकण से बम्बई तीन दिन और बम्बई से यहाँ (खण्डवा) सात दिन यानी तारीख ९ १० जून का वर्षा आयी समझो। जो जमीन के इतने विषैले समथक कि आसमान को देखना भ्रम समझे, व भी दिन और रात आकाश मे बादल के टुकड ढूढते। दिना की, समय की दूरी के लिए बिना ठहरे कल जोर की बरसात आ गयी। 'लोकल रेन है', विशेषना के बीमारो ने कहा। 'पानी है, बरसात है' जन-जन ने कहा। वर्षा का स्वागत। वह जो ठेला कुली जा रहा है वह चाहता है कि ठेले का माल न भीगे किसी ओट की शरण ढूढ रहा है ठेले के लिए। किन्तु स्वय किस चाव से बरसाती बूदो मे नहा रहा है। दो आने घटेवाले साइकिल-सवार उडते वस्त्रो और उखडते पहियों सिनमा के गीत इस मजे से गा-गाकर अधड की उपक्षा कर रह हैं माना बरसात पा ली, सब कुछ पा लिया।

आँखो म फुहारें जा रही हैं किन्तु ध्यानस्थ-से उन्हे मूदकर, बूद-बूद

बरसत वरदान का चाव से आगमन मनाया जा रहा है। आँखो को बिजली की चमक और कानो को बादल की कड़क, कैसी भा रही है, मानो वीणा, मदग किसी का इस शातल स्वप्न के साकार होने के समय मदाखलतबेजा' करने का अधिकार नही है। बस यही गरज, यही घुमड, यही टप-टप, यही ठहर-ठहरकर मचकियाँ-सा लेता अघड और यह घर के वस्त्रो और वस्तुआ और नारी नर क मन और विश्वासो को आनन्द-आभार और वर्षा के ज्वार से औंधा-सीधा करता व्यापार चाहिए। मुह खुलता है कि कैसी बुद्धि और कला मान-राशि के पुण्यकलेवर को लाँघकर कुदकियाँ और किलकारियाँ मानो फूटकर निकल पडना चाहती हैं। वे सब चुहुल, जिन्हे अपनानेवालों को हम चश्मा चढ़ाये, चश्मे के कुछ बाहर और कुछ भीतर से झांकते—शोहदापन कहत थ अब अपनी ही तबियत मे बरबस उगे उठते हैं। कैसा प्यारा सुहाना है मौसम! कैसी नन्ही नन्ही पर विस्तत सुकुमार विश्वासा-सी हैं बूद! गर्मी को विदाई दन की याद ही नही रह रही, बरसात का स्वागत कौन करे, बहोशी जा है।

यदि आकाश क बादला के पृथ्वी की ओर होनवाले इसी बरसात आकषण क कारण श्यामला भूमि का हरी हरी कर डालनवाले लोगो न कृपक नाम पाया था, ता अनन्त आ नन्द क पुत्र ने भी इन्ही बादला से श्यामता क्या न ली होगी! इन्ही से रण कौशल, इन्ही से बरस पडना इन्ही से छा जाना, इन्ही स उग उठना, इन्ही से हरा हरा कर डालना और फूलो स भर और फला स लाद दना क्यो न सीखा होगा! और इसीलिए क्यो न इसी आकषण के अनुकरणशील साधक, उस बाँसुरीवादक को, अगजग ने कृष्ण कहकर मस्तक न झुका दिया होगा?

अहा फिर फुहार आयी, यह गरज, यह बरस! तडप बेचारी बिजली के मधुर उत्पाता और बादल की हुकारो मे जा छुपी। और फिर पानी पानी पाना।

कैसी मनमोहिनी परेशानी है, दुनिया गीली है दुनिया तपन के बीचो-बीच थरथग उठी है, किन्तु कैसी मस्तानी है!

बरसात! तुम्हारा स्वागत।

और लीजिए वे नाच उठे किलकारी नरेश। नाच उठ? दौडना है,

मटककर चलना है, फुदकना है, छलाँग मारना है और इस सारी मेहनत की ओर उसकी थकन की चोरी करके चोरी चोरी सी, वह आ गयी मुसकाहट, और वह छा गया आँखों में आवेगों तक मानो एक तान पर—ये सब हाव-भाव उतरकर आनन्द का थाप पर आमोद के सम पर उतर-उतर रहे हों जी इसीलिए लगते हैं बच्चे नाच उठे नाच उठे किसीकी नन्ही भुजाएँ ऊँची हैं, किसीकी ऊपर झुकी हैं, किसीकी दोनों भुजाएँ किसी के गले में, फिर जूझना है भीजना है । यह नाच नहीं उठे तो क्या कर उठे ? माना अहमदखान थिरकवा को तबला इन गीत भर कुतूहला को नहीं बाँध सकता, क्योंकि इनके आनन्द की उड़ेल का सौदागर आसमानवाला है जिसकी तान पर संसार के नृत्य गान ठहरे हैं। सो ये नन्हे नन्हे नारायण श्याम गौर किमि कहौं बखानी तो नाच ही उठे। कीच के बीच से हटकर मचलती हुई निकलती छोटी छोटी पथ गलियाँ बीहड़ प्रदेश को भी कुंज गलियाँ बनाती बढ़ी कि वह जोर का फर्राटा, और वह गरज वह बरस। और गलियों कूचों की बाढ़ों में कितने आषाढ़ निहाल नहीं हो हो उठे जब कीच पर कमल और कमल पर सूरज की तरह नन्हे मुन्नों की फुलवारी उग उठी है और बरसात है कि काले बादलों, सुनहली बिजलियों, काले खेतों पथरीली चट्टानों हरे मैदानों के रूप में मानो वन अपनी रामायण के सब काण्ड लिखने बैठ गया है।

आखिर वर्षा आयी है। आनन्द की आकर्षण की, तारुण्य की राधा की कृष्ण की बरसाने की, वृन्दावन की, कामवन की, यमुना की और ऊपर के आसमान की या नीचे की जमीन की, किस किसकी छवि देखें ? भवानी[1] बेटा के शब्दों में कहें—

> "बरसात आ गयी रे
> बरसात आ गयी रे।



---

१ कविवर भवानीप्रसाद मिश्र।

२३

बुनियादी शिक्षण बुनियादी समझ की नींव

बच्चों की देखरेख करनेवाले का, चाहे वह पालक हो कि शिक्षक, एक विचित्र नाम पड़ गया है। उस समय जब बालक की समझ में कोई बात न आ रही हो और पालक और शिक्षक समझ न पाने के बालक के प्रयास पर चिढ़ उठे हों, तब बालकों के उन रक्षकों का नाम है 'भय, जबरदस्ती', 'बुद्धि से बेवास्तापन' और 'विचार-शून्यता'। असल में समझ न पाना बालक की जितनी बड़ी अयोग्यता कही जाती है मनोवैज्ञानिक के सामने उससे बड़ी मूर्खता उसकी है, जो बालक को समझ नहीं पाता। लगता है, तेजस्वी बुद्धि का शिक्षक और पालक भी अपनी बुद्धि और ज्ञान की परिभाषा का इतना दास हो गया है, मानो भावना नाम की कोई चीज उसके पास रह ही नहीं गयी है। 'सूझ', 'कल्पना' और 'योजना'—ये तीनों ही बालक के प्रति उत्तरदायित्वहीन हैं, यदि ये भावना को आगे करके नहीं चलते। हम यह सोचना चाहिए कि शाला की चहारदीवारी ही संसार नहीं है, और व्यक्तित्व केवल शिक्षक का ही नहीं है, बालक का भी है। और सच पूछिए तो शिक्षक की आवश्यकता बालक के विकास के लिए है। बालक की भी रुचि है, उसकी भी महत्त्वाकांक्षा है उसके भी नन्हे-नन्हे स्वप्न होते हैं, उसकी भी कल्पनाओं का खिलवाड़ा का एक इतिहास होता है और इन्हीं नरम-नरम द्रव्यों में से शिक्षक को बालक की बुद्धि का निर्माण करना है। लाठी का तत्त्वज्ञान तो अब पशुशाला में से भी रोका जा रहा है। 'छड़ी लागे छम छम, विद्या आवे

घम घम', 'मार से भूत भागते हैं', ये कहावतें जाने किस युग की हैं ? इन कहावतों को तो मनुष्य बुद्धि की मूखता की पक्की प्रदक्षिणा कहना चाहिए।

बालक के जीवित रहने का मूलधन उसके लोभ गव, श्रद्धा, सबकुछ बालक म होते हैं, किन्तु हमारा प्रयास होता है कि हम तो बालक के साथ पशु से बदतर बरतें और बालक भगवान कृष्ण के गीता मे बताये हुए योग के सारे तत्वो के अनुसार हो। अज्ञान से योगी बनने की आशा मूखता ही कर सकती है। शिक्षक के नाते हमारी सबसे बडी सफलता तो यह हो कि बालक हम पर विश्वास कर सकें। हमारी छडी, हमारा क्रोध हमारी असहिष्णुता, हमारा अधैय और सबसे बडी हमारी घर जाने की जल्दी स्पष्ट प्रकट करते हैं कि किसी बहुत गलत आदमी को शिक्षक बना दिया गया है। उस बेचारे पर दो बोझ पड गये हैं। पहला बोझ बालक, और दूसरा बोझ शिक्षकी और इन दो बोझो को सहने की सामथ्य शिक्षक नामक प्राणी म नही है। शिक्षक समझता है कि बालक पागलो जैसा बोलता है, कसी बेहूदी बातें करता है किन्तु पागलखाने मे बालक बहुत कम भेजे जाते है, वहां तो क्रोधियो की तादाद ही अधिक मिलेगी।

यो शिक्षक समाज का बहुत बडा घटक है। उसके साथ एक गहरा अन्याय हुआ है। पाठय पुस्तको और बच्चो मे रहते रहते वह बडी उम्र म भी बच्चा बन गया है बच्चा बनने के लिए बाध्य हो गया है। अब यदि आप चौराहा पर उसे देखें, तो उसकी बच्चो जैसी बातो से समाज चिढे नही। यह शिक्षक का बहुत बडा त्याग है कि उसने शिक्षकत्व स्वीकार किया है।

अब तो समाज, शिक्षक और शासन तीनो को मिलकर सोचना यह है कि बुनियादी तालीम की ओर हम जाना है।

इस तालीम की ओर ससार के देश जाते रहे हैं। मानव-जीवन का यह स्वाभाविक रुझान रहा है। समाज की सेवा करनेवाली प्रवत्तियो का क्या कहना ? एक व्यक्ति जहाँ श्रेष्ठ सेवा करता है वहा अपना उदाहरण भी छोडता जाता है। कहते हैं, राजा दशरथ के यहा भरत-जैसे पुत्र न जन्म लेकर रघुवश का नष्ट होने से बचा लिया, किन्तु बुनियादी बात यह है कि किसी सघपरत परिवार मे आज भी भरत के स्वभाव का अधिकार सम्पन्न व्यक्ति पैदा हो जाय तो बर्बाद होते हुए परिवारो की रक्षा कर सकता है।

भारत मे मेले लगा करते हैं। ससार के अन्य देशो मे भी मेले लगते है। इन मेलो द्वारा कुछ व्यक्ति, सस्था, धर्मस्थापक आदि का ही गुणगान नही होता, किन्तु मानव-मानवी तथा बालको के सम्पर्क के द्वारा सस्कृतियो तथा अभिरुचियो मे वृद्धि हुई है और जीवन की बुनियादी बातो के विषय मे लोक जीवन के लोगो ने अनेक बातें वहाँ सीखी हैं। बातो ही-बातो मे कितने ही, मनुष्यो की बीमारियो के इलाज सीख गये हैं। पशुधन को सँभालने और उनकी बीमारी के इलाज भी सीख गये। भोजन बनाने की क्रियाएँ सीख गये और न जाने कितनी ही बातें युगो से लोग सम्मिलन के इन सस्कारो से सीखते चले आये हैं। अत त्योहार, उत्सव तथा अन्य मिलन के अवसर मिलते जाने से सामाजिक सस्कृति आज तक मनुष्य जीवन को जीने योग्य बनाये हुए है। शहर के आदमी के कपडे मे अगर सिकुडन आ जाय, तो वह उसे पहनना पसन्द नहीं करता, सभ्य जो ठहरा। गाँव का आदमी अपने परिवार मे और अपने मित्रो मे हृदय मे सिकुडन नही आने देता। अत गाँव का आदमी सस्कार-दुष्ट नही है वह सस्कार इष्ट है। कथा पढते समय आज भी उसकी आँखो मे आँसू आते हैं। घर मे किसके बीमार होने पर आज भी वह रात रात जाग कर गुनिया को लाकर बीमार के पास एकत्र करता है। अत यदि बुनियादी शिक्षण की बातें उचित ढग से सामने रखी जाएँ तो मुझे लगता है कि वे गाँव मे शीघ्र फलेंगी। गाव के लोग बुद्धि की कुलाटें नही खा सकते, किन्तु वे गुण और ज्ञान को भूल जाने अथवा मजाक उडाने जैसी नगण्य किस्तो मे ग्रहण नहीं करते। वे स्वीकार करते है तो पूरा छोड देते हैं तो पूरा। अत उनके बीच मे बुनियादी शिक्षण के अधिक सफल होने की सम्भावना है।

इधर हमारे देश मे नये नये बाध बँध रहे हैं। नयी पाठशालाएँ नये अस्पताल, नयी सडकें, खेती की नयी विधियाँ, खाद देने के नये तरीके, सभ्यता के इन अनिवार्य सकटो मे आज का हमारा देशवासी पिछड न जाए पुराना न पड जाए इस बात के लिए बुनियादी तालीम की जरूरत है। उसके मन की इस अवस्था को तो हटाना ही होगा कि नीचे वह बैल-गाडी चलावे और ऊपर उडनेवाले हवाई जहाज का ओर वह भौचक्का-सा देखे। उसके पास तो इस बात का ज्ञान पहुँचाना ही होगा कि बैलगाडी

से लगाकर हवाई जहाज तक, यात्रा के सारे साधन एक ही बिरादरी के है। यदि जहा हवाई जहाज जा सकता है, वहाँ बैलगाडी नही जा सकती, तो जहा बैलगाडी अथवा घोडे की सवारी जा सकती है, अथवा पैदल यात्रा की जा सकती है वहा हवाई जहाज भी नही चल सकता। अत दोनो के मध्य के मर्यादा बिन्दु की जानकारी समाज के पास पहुँचनी चाहिए क्योकि प्रजा सत्ता के युग मे जिसको मत देने का अधिकार है उसको देश का मालिक कहलाने का अधिकार भी है। और विश्व के सारे सम्बन्धो, सुधारो और हलचलो से आज का मतदाता बेजानकार नही रखा जा सकता। जन तन्त्र के व्यक्ति का विश्व की शक्ति से अपरिचित रहना किसी भी देश की प्रजा सत्ता के लिए भयकर सकट है, जिसके कारण जन-जीवन को न मालूम होते हुए भी देश की पूरी स्वतन्त्रता हाथ से जा सकती है।

कानपुर म किसी 'गोरे' न गगा क तट पर अपनी पत्नी के मरने पर एक मन्दिर बनवा दिया और अपनी पत्नी की मूर्ति स्थापित करा दी। इस मूर्तिपूजक देश के लोग शताब्दियो से बुनियादी ज्ञान से खाली रखे गय हैं अत जिस तरह वे अन्य मन्दिरो म जाकर गगाजल और चन्दन चढाते रहे उसी तरह कानपुर की गगा म स्नान करने आनेवाले ग्रामीण तथा शहराती सीधे साधे अज्ञान की लोग 'गोराग मन्दिर' मे भी गगाजल और चन्दन चढाने लगे। इस घटना म ग्रामीणो का कोई अपराध नही है। भारतीय ज्ञानक्षेत्र और जन-जीवन क बीच का बुनियादी सम्बन्ध स्थापित न होन अथवा न रहने के कारण यह कठिनाई उत्पन्न हुई। इसी तरह शताब्दियो के अज्ञान स जन जीवन की समझ पर जो जो सकट उपस्थित है उनकी कल्पना हमे कर लेनी चाहिए।

पनघट, बाजार तीर्थयात्रा त्योहार और समाज के व्रत तथा उत्सव, गरज यह कि मानव और मानवी के जो सामाजिक मिलन क्षेत्र हैं, उन सबम बुनियादी जानकारी बढाने का एक डोरा बुद्धि की बौखलाहट स नही शासन के अधिकार से नही, उत्साही समाज सेवक के अज्ञान स नही, किन्तु माता की सी ममता तथा निर्माता की सी दृढता के साथ जन-जीवन की समझ के पास, जानकारी का एक डोरा पहुँचना चाहिए, जिससे अथ-

रहित भाषा अथवान जीवन की गुप्त और प्रकट भेद देनवाली सस्कारपूर्ण परिभाषा बनती चली जाए।

बुनियादी शिक्षण का उद्देश्य वेतन लेकर नन्हे बच्चो के पीछे पड जाना ही नही है, समझ के सहारे समाज जीवन मे प्रवेश करना और प्रवेश पाना है। उस समय विभिन्न धर्मों, विभिन्न समाजो, विभिन्न मतभेदो, विभिन्न लडाई झगडो के बीच सामजस्य ढूढते-ढूढते ऋषि जीवन मे प्रवेश करने की एक ऐसी कडी शिक्षण विभाग के हाथ लग जाएगी, जिस पर ससार गर्व कर सकेगा।



२४

बुनियादी तालीम : आकर्षण बिन्दु

सच पूछिए तो सातवें आसमान से उतरकर अध्यापक बच्चों से बुनियादी तालीम के जमाने में ही मिलने-जुलने लगा है। अब वह परिभाषाओं से काम नहीं निकाल सकता। उसे उदाहरणों में ही घुल मिल जाना होता है, भले ही परिभाषा बने या बिगड़े। सच भी है, यदि देश का तरुण बिगड़ गया, तो परिभाषा बनी तो क्या बनी, यदि तैयार माल ही बिगड़ गया तो आर्ट-पेपर पर गुणों की फेहरिश्त लिखी जाने से क्या होगा? पहले बच्चे अध्यापक से मरखने जानवर की तरह डरते थे। गाँव में तो अब भी डरते हों तो अचम्भा नहीं, किन्तु जहाँ बुनियादी शालाएँ प्रारम्भ हुई हैं वहाँ बच्चे अपने अधिष्ठाता के पास अभिभावक की तरह जाते हैं। जहाँ नहीं जाते वहाँ बुनियादी तालीम का श्मशान है, बुनियादी तालीम नहीं। अब तो अध्यापक छोटी-सी समस्या रख देता है और बच्चे और अध्यापक मिलकर उस पर सोचने लगते हैं, चाहे जिसको उस समस्या का हल सूझ जाय।

अब 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' या 'वन्दे मातरम्' जब गाया जाता है तब दीवार पर पेंशर भरी ध्यान ताडन में मननवान चित्र चित्र की तरह बच्चे बेतरतीब खड़े नहीं होते। ऊँचाई नीचाई का विवेक रहता है। न मानों स्वर बच्चों के मन में गुदगुदियाँ करते हैं। जीवन की तरह स्वर के उतार चढ़ाव पर भी संयम है, संगत है, माधुर्य है। इसलिए प्रार्थना रस

अदाई से थोडा सा हटने लगी है। प्रार्थना अपने प्रकार ही से मानो यह सूचित करती है कि मानव से बडा भी कोई जगदीश्वर है।

अब बच्चो मे कहानिया —'एक था राजा' से शुरू नही करनी है। घटनाएँ घटेंगी, वे किंवदन्तियो, मुहावरो और कहानियो मे भी ढल जाया करेंगी, मानो तारल्य है जो उतार ढूढता हुआ अपने आप एकत्र हो जायगा। जो बच्चे अपने शरीर तक की परवाह नही करते हुए अस्त व्यस्त रहते थे, वे अब बगीचे के वृक्षो तक की देख भाल, व्यवस्था और सार सँभाल करने लगे हैं। कागज बनाने पर और लकडी के काम पर भी ध्यान देने लगे हैं। अब भूगोल मे यह न होगा कि बालक को गगा की लम्बाई और मिसिसिपी की गहराई का पता तो हो, किन्तु अपने घर के जाने की सीढी की गिनती ही याद न हो।

अभी तक हमारे गाने ऐसे थे कि उन्हे नन्हे बच्चो की नीद आने की दवा कह सकते थे। अब तो बच्चो को सिखायी जानेवाली रचनाओ का सरल त्रैराशिक साधा जायगा, एक तरफ 'बच्चा', दूसरी तरफ 'रचना' और तीसरी तरफ उसकी समझ' जिस पर रचना बराबर उतर रही है। जो बच्चा की समझ पर नही उतरती, उसे समझ के बाजार का उतरा हुआ आम समझकर फेंक दीजिए। राष्ट्रीय गाने और उपदेश के गान, यदि बच्चो की सूझ के खिलवाड न बन सकें, तो ऐसे गीतो को पुराण वस्तु सग्रहालय मे बाधकर रख दीजिए। बुनियादी तालीम वह जो 'समझ' से 'सूझ' का रिश्ता बैठावे। यह नही हो सकता कि 'सूझ' सिर कटी एक तरफ लटके और 'समझ' धड बनी दूसरी तरफ पडी रहे। सरस्वती के मुख पर ग्रहण लगानेवाले ये राहु-केतु अब नही रहेगे।

अब 'तालीम' की कुलाटें[1] समाप्त हो गयी, क्योकि बुनियादी तालीम आरम्भ हो गयी। व्याकरण अब उदाहरणो से बनेगा। एथरिंगटन साहब[2] को तो अध्यापकजी ही पढेंगे। एक कहानी है कि पाणिनि का व्याकरण रटी हुई एक भील लडकी गगा के तट पर झाडियो मे बैठी हुई एक माला

---

१ घुटन्त विद्या।

२ 'भाषा भास्कर' नामक हिन्दी व्याकरण के प्रारम्भिक रचयिता।

बना रही थी। कुछ मोती गथ रही थी और कुछ सान के गुरिये भी पिरो रही था। व्याकरणाचाय महामति पाणिनि उसी रास्ते स निकल। कहत हैं, न महर्षि पाणिनि ही जानत थे कि यह लडकी व्याकरण जानती है और न लडकी ही जानती थी कि यही महर्षि पाणिनि है। ऋषि ने झुंझलाहट से पूछा—

काच मणि काचनमेकसूत्रे
ग्रथ्नासि बाले तव को विवेक ।'

यानी—'लडकी, काच, मोती और सोने के गुरिये एक सूत्र मे पिरो रही है तरा विवेक क्या हुआ?' लडकी ने हौले से डरते हुए जवाब दिया—

'महामतिर्पाणिनिमेकसूत्रे—
श्वान युवान मघवानमाह।"

अर्थात—"*महामति पाणिनि ने ता एक ही सूत्र मे (सज्ञा के उदाहरण मे)* कुत्ता, तरुण और इन्द्र गूथ दिया है।"

बच्चे जब अपने सिखानवाले से टेढी-आडी बातें पूछने लगें, तब अध्यापक द्वारा उन्ह निरुत्तर न किया जाय, किन्तु समझाया जा सके, तब बुनियादी शिक्षण सफल होगा। शायद इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने गुरु के लिए लिखा है—

शिष्यादिच्छेद पराजय"

शिष्य म तो गुरु हारने की ही इच्छा करे। निस्सन्देह तभी उसके 'गुरुत्व' की शाभा है।

शाला-गृह उदासीन जोगियो का अखाडा न हो वह अन्यस्थित पडी हुइ वस्तुआ का कचराघर भी न हो। वह नन्हे बच्चा के खिले हुए रूप का नदन-कानन हो। उसम श्मशान की-सी मुर्दनी नही हानी चाहिए। जो उन्हें बच्चा की शरारत पर मस्तक नहीं डुला सकते, वे कैसे बुनियादी तालीम दे सकत हैं, मेरी समझ म नही आता। अध्यापक, बच्चों के जेलर

बनते हुए अच्छे नहीं लगते। वह ब्रिटिश-युग अब कभी न लौटे। हमारे अध्यापक के साथ बच्चा अब नयी नयी बातें पूछ पूछकर खेले और खेल-खेलकर नयी नयी बातें पूछे। शाला बुद्धू बच्चों का नियंत्रण गृह न रहकर उस सूझवानों की समझ का क्रीडागार होना चाहिए।



२५

कृषक सिपाहियो का विजय-दिन

इतिहास अपन को दुहराता है' हम अपन पुरुषाथ से चाह इस कथन को सच्चा सिद्ध न कर पाते हो, किन्तु हम इतिहास की स्मतिया को, त्योहार बनाकर दुहरान के आदी जरूर हो गय हैं। कृष्णाष्टमी रामनवमी, पयुपण पव ईद क्रिसमस और विजयादशमी के त्योहार आकर हम अपन *पुण्यमय इतिहास की याद दिला जाया करते हैं। इतिहास बनान की बात के* लिए पुरुषाथ तेज, तैयारी और तप चाहिए। विजया आयी, और उसी श्रद्धा से भारत के हिन्दू समाज न दुर्गा पूजन सँवारा, रामचन्द्र की विजय मनायी, अपन शस्त्रों को धो लिया, गनीमत, कि अब पुन उन्हें जग खान को रख दन के लिए नहीं।

× × ×

स्मरण से विस्मरण की ओर जानेवाले भूतकाल मे से जो उज्ज्वल है, वह शेष जो तजस्वी है वह जीवित, जो निमल है, वह अमर, जो अदम्य है, वह जाग्रत रह ले जाता है। विस्मरण स स्मरण की ओर आत हुए भावी युग की पीढिया को याद की वह धरोहर सौपता जाता है। भारत की *पुराण-युग की ऐसी सब यादो म, विजयादशमी, यादो की याद है त्योहारो* का त्योहार है। होली हम देखकर मुस्कराती है कृष्णाष्टमी कम पथ म भक्तिमय चेतावनी देती है रामनवमी त्याग और कष्ट-सहन का बल बताती है शिवरात्रि दारिद्रय की वभवशीलता का सन्दश दती है, किन्तु

विजयादशमी हमारी जाति की आत्मा को प्रतिवर्ष जोर से पुकारती है और पुकारकर लौट आती है।

× × ×

वह क्या पुकारती है? बात बहुत पुरानी है—शब्दों के प्रकट करने का तरीका भले ही कुछ और हो। भारत में एक युग ऐसा था कि प्रजा-पीडा के बल पर लोग साम्राज्य की स्थापना करते, उन्हें हम राक्षस कहते थे। ऐसे लोग सामूहिक दलन, सामूहिक लूट, सामूहिक शोषण के बल पर जो कुछ निरंकुशता करते, उस निरंकुश सत्ता का नाश करने के लिए स्वर्ग के देवता और देवियाँ जमीन पर उतरते। जमीन के लडाके, ऐसे राक्षसों से लडकर स्वर्ग के देवता और देवियाँ बन जाते। राक्षसों का यह स्वभाव रहा कि प्रकृति की निर्मल और प्रभु की उज्ज्वल और स्वाभाविक समाज-व्यवस्था को बिगाडकर अपनी समाज व्यवस्था को चलाते, ऐसी समाज व्यवस्था, जो शोषक, पीडक, ऐयाशों और प्रतिहिंसकों के लिए सुखदायक हो। पुराणों का महिषासुर ऐसे ही सम्राटों में था, और उसका नाश करने के लिए दुर्गा ने अवतार लिया और साम्राज्य के नाश का त्योहार बनी हमारी विजया रानी, हमारी विजयादशमी।

× × ×

मानव जब प्रकृति से होडा-होडी करता है, तब वह प्रकृति का अपमान नहीं करता। कवि बहुत झरनों के गीत लिखते हैं। चितेरे बरसते बादलों के चित्र बनाते हैं। यह तो प्रभु की रचना से की जानेवाली नम्र होड है, अपने निर्माण से निर्माण सीखने की कला विश्व के निर्माता के चरण चिह्नों को ढूंढ़-ढूंढकर निर्माण की दिशा में चलने का प्रयत्न है। फूलों, फलों, कंदों और पत्तियों से भरे जंगलों में घूमता हुआ मानव, पशुओं पक्षियों को खाते-खाते एक दिन प्रकृति से पशुत्व छोडकर मानवत्व सीखने लगा। उसने पहले दिन अन्न कण बोये। वे उगे, फिर फले। पशु खाते और पत्ते पहनते हुए मानव ने जिस दिन पहले अन्न बोया, क्या उस दिन से बडा भी कोई त्योहार हो सकता है? विजया वही दिन है। उस दिन विजया जिन्हें त्योहार

की तरह, पवित्र त्योहार की तरह, मनानी होती है, वे युगो के शोधो को दिनों म दुहरा लिया करत हैं।

× × ×

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को मिट्टी लाते हैं। फिर छोटा-सा चौकोन खेत घर ही मे बनाते हैं, और तरह-तरह के अन्न-कण एकत्र करते हैं, और उस खेत की याद दिलानेवाले, 'बड़ी याद' के छोटे खेत मे बो देते हैं। ऊपर से पानी सींच दते हैं। यह अनाज हो गया। अब हाथ मे कपास स रूई निकालते हैं, बत्ती बनाते हैं। और कुम्हार के यहाँ का ताजा घडा लाकर उसके ऊपर के दीये मे हमारे प्रयत्नो की ज्योति को जला देते हैं। उस घट पर हाथ का कता हुआ सूत लपट देते हैं। और जो दीपक दानी हम बनाते हैं, उस उस बोयी हुई खेती के बीचो बीच, घट पर रखकर उसपर, यदि हमारे पास हो तो, रत्न रख देते हैं। क्याकि कृपक-भारत के निवासी हम, जानत हैं कि अन्न बोया और रत्न फले। हमारा आसन जमा, उस छोटे से खेत की रक्षा होने लगी। अपनी गाय के गोबर से घर लीपा गया। खेत के बीच के घट पर दीपक मे बत्तिया जल उठी। उसे हम 'नदा दीप' कह उठे। बकिम न कृष्ण के पिता नन्द के नाम का अथ लगाते हुए लिखा है कि 'नन्द' शब्द के पहले के 'आ' उपसग का लोप हो गया है। यथाथ मे कृष्ण, 'आ नन्द जन्मा है। तब यही का नन्दा दीप भी आनद-दीप क्यो नही? खेत मे अनाज बोन पर, कृषकी के आकषण से कृष्ण घनश्याम काले बादल अब जमीन पर उतर आव, और जब रत्न फल उठें तब भला 'आनन्द-दीप' क्यो न जले और खेत म फले हुए 'रत्नो की कृषक भारत' चन्दन, चावल, धूप, दीप से पूजा क्या न करे? फिर उस घट को जो खेतो के रत्नो स भर भर उठे, कृषक पुजारी पुष्पमाला क्या न पहनावे? खेती आयी, रत्न फले घट-स्थापना हुई अनाज पका कि इस दश क कृषक खेती काटने और अन्न घर म लान का काम बूढा, बच्चा और दवियो के हाथ मे छोडकर, शस्त्र लेकर सीमोल्लघन कर दत वे सिपाही बनकर राज के सामन अपने मस्तक हथेली पर लेकर खडे हो जात हैं। हमारी जाति की सिपहगिरी का खेती म विजय के मोती फलानवाला किसानो को अन्नदाता स राष्ट्ररक्षक बनान

वाला और भारतीय राष्ट्र को स्वतन्त्र उसके ध्वज को विजय ध्वज और उसकी तलवार को तेज पानी की बनाये रखनेवाला यह त्योहार—यही हमारी प्रलय को बेकाबू पुकार उठनेवाली विजयादशमी है। जिनमे बल हो, वे अपनी भुजाओ मे कुछ ढूढें, जिनमे न हो, वे बन्दरा की तरह जगलो के पत्ते नाचें।



२६

होली साम्य का त्योहार

होली याने जलती ज्वाला, होली याने चिनगारिया, राख। होली अर्थात वर्ष के बीतने की आशा, होली अर्थात नये वर्ष के आने का उल्लास।

फाल्गुन के अर्थ धूल उड़ाना। फल्गु के मानी गुलाल। बगाल मे होली, होली नही दोलोत्सव। उस दिन बालकृष्ण की प्रतिमा को झूले मे बैठाकर, उन्हे पारी पारी से घर के आबाल-वृद्ध झूले देते हैं। कृष्ण पर फल्गु (गुलाल) चढाया जाता है और बचा हुआ गुलाल प्रसाद रूप सबको लगाया जाता है। बगाल के नवाब सिराजुद्दौला उस दिन का उपयोग अग्रेजो के एप्रिल फूल की तरह करते। उस दिन वे झूठी खबरें फैलाते, और उनका परिचित जो सरदार उस खबर पर विश्वास कर लेता, उसे मूर्ख बनाया जाता, मूर्ख घोषित किया जाता।

उडिया घरो मे बालकृष्ण की मूर्ति ही उस दिन पालकी मे बैठाकर घुमायी जाती है। इस त्योहार को बगाल के चैतन्य महाप्रभु पथ के लोग बहुत गर्वीले होकर मानते हैं।

रग के इस त्योहार के स्वामी होने से दक्षिण मे भगवान् श्रीकृष्ण *'श्रीरग' कहलाये और उन्ही के नाम पर एक नगर बसाया गया* 'श्रीरगपट्टन'। श्रीरग नाम के साथ पट्टन जुड़ा है। पट्टन सस्कृत 'पट्टनम' से बना है, जिसका अर्थ है 'नगर'।

महाराष्ट्र देश मे, पेशवाई युग मे यह त्योहार पूरे दस दिनो तक मनाया

जाता था। वहा होली जलन की पूर्णिमा अथवा धुरेंडी की प्रतिपदा को वह महत्त्व प्राप्त न था, जो 'रगपचमी' को था। चूकि नाटक, प्रहसन आदि इसी महीने म प्राय खेले जाते, अत उनके खेले जाने के स्थान का 'रगभूमि' नाम साथक होता है।

इस दिन उत्तम और शृगार शाभन वस्त्रो को पहनना, मिष्ठान्न भोजन और अपन को भूल जाने तक मनोरजन, यह भारत के उत्तर-दक्षिण, पूव पश्चिम सब तरफ एक सा है। इस दृष्टि से, हमारी सस्कृति की हमारी राष्ट्रीयता की विस्तत एकता सिद्ध करनेवाले त्योहारो मे यह त्योहार प्रमुख है।

चूकि दक्षिण देश मे महीना शुक्ल पक्ष मे प्रारम्भ होता है, इसलिए पूर्णिमा को महीना न बदलकर आगामी अमावस्या को बदलता है। अत फाल्गुन का महीना बीत जाने पर हमारे उत्तर भारत म रगपचमी जबकि चत्र के प्रारम्भ म पडती है, दक्षिण मे वह उतरते फाल्गुन ही म पडती है।

ऊँच नीच भेद, उम्र का अ तर, शिक्षण की विषमता आदि मानव मानव क बीच की किसी विभेदन रखा को देश के किसी भाग मे उस दिन प्राय प्रश्रय नही दिया जाता।

पजाब मे सिक्खों के 'नामधारी'-सप्रदाय मे इस त्योहार पर, सामूहिक विवाह प्रथा सुनी जाती है, जहा धमगुरु महोदय की उपस्थिति मे वर-कन्या का विवाह होता है और माता पिता को खच आता है, फी विवाह एक-डेढ रुपया।

हमारे यहाँ बसन्त पचमी आयी कि त्योहार प्रारम्भ हो गया। माघ शुक्ल पचमी से चैत्र-कृष्ण पचमी (रगपचमी) तक हमारा होली का त्योहार।

इस समय हम वस त का स्वागत करत हैं। जाडा गुलाबी रह जाता है। लू और लपटो से लिपटी गर्मी आन नही पाती। बरसात का कही पता नही उम बीत चार महीने हो गय, उस आने मे चार महीने बाकी हैं। साम्य का युग छा गया।

इस समय हम गेहूँ, चना, मटर, अरहर अलसी आदि फसलो का त्योहार मनाते हैं। इस समय आम बौरत महँकते और फलते हैं। इस समय

आम की पत्तियों की लाली स ताँबा उसके कोपलो से पुखराज और उसके पके फलो से सोना निखरता टपकता है। खेत म खलिहान म, जगल म, वीरान मे इस समय मानो सोना उग उठा है वह हमारे जीवन म भी क्या न उग उठे।

इस समय कहते हैं, भक्तराज सत्याग्रही प्रह्लाद को राम नाम लेने पर एक जालिम सम्राट ने पिता होकर भी पुत्र तक की वाणी का स्वात त्र्य छीन लिया था। कहते हैं अपनी राक्षसी बहिन से सम्राट् ने कहा कि ऐसे पुत्र को आग मे जला दे जो मेरे सामन 'नारायण' का नाम लेता है। सवभूत-हितेरत प्रह्लाद ने कहा

'गले तौक पहिरावौ पाव बेडी लै परावौ
गाढे ब धन बँधाऔ, औ खिचाओ काची खाल सौं।
और बीछुले बिछाओ, तापै मोहि के सुवाओ
फेरि आगी हू लगाओ, बाँधि कामर दूसाल सौ।
गिरि से गिराओ, काला नाग से डसाओ
हा हा! प्रीति ना छुडाओ गिरिधारी नदलाल सौं।।"

होलिका जल गयी, सम्राट मारा गया, प्रह्लाद बच गये। दशहरा और होली, दो महान त्योहार पुराणो मे, दो महान सम्राटो के सवनाश के और जन-जीवन के उल्लास-पव हैं।

और आज? हमारे निश्चय हैं हमारे श्रम हैं, हमार त्याग हैं, हमारे उत्सव हैं। आज हम पर पराधीनता का ब धन नही है। होली मे हमारे घर 'कट्टर युग' मे भी जातिभेद, ऊँच नीच का भेद नही होता था। अब तो भेद रखनेवाला दण्डनीय होता है।

होली म हम उन घर हठ करके जाते हैं जिनके यहा इस वष भर मे शोक हुआ हो, शोकग्रस्त लोगो को साथ लेते हैं, गुलाल लगात हैं रग छोडते हैं, उ हे जन जीवन के अन त उल्लास म शामिल करते हैं। उस दिन नजीर के शब्दो का हम पर रग छा जाता है—

'गोवि द छैल कुज बिहारी की बोलो ज
तुम भी नजीर कृष्ण मुरारी की बोलो जै।।'

☐

२७

साहित्य के प्रति मेरा दृष्टिकोण

मैं प्रारम्भ में ही निवेदन कर दू कि जिस जगह स जिस धरातल से, जिस बेचैनी स, जिस परिस्थिति से जिस लाचारी से अथवा राष्ट और मानव के जिस अह स, आनन्द से और मरण स मेरी तुकबन्दियां आती हैं, उसी द्रव्य स मेरी कहानियाँ, निबन्ध, अन्य गद्य तथा 'कर्मवीर म अथवा अन्यत्र लिखे लेख भी आते हैं। जैसे दीवार पर तस्वीर टागने के लिए कील की और पाँव म गडनवाले जूते की कील ठोकने के लिए हथोडी की आवश्यकता होती है, उसी तरह भिन्न भिन्न रूपा मे मुझे भी अपनी बात उपस्थित करनी होती है। खयाल जब उठता है तब जननी की तरह मैं भी उस अन्त करण म छुपाये जाने की पद्धति से भाषा मे छुपान का यत्न करता हूँ किन्तु भाषा सरल रखना चाहता हूँ। मेरी भाषा पर भी कठिन होन का आरोप कही-कही है किन्तु मेरी लाचारी यह है कि उन विचारो का मेरे लेखे उसस सरल भाषा मे नही लिखा जा सकता था। मेरे एक अत्यन्त सन्निकट साहित्यिक मित्र न एक बार मुझे लिखा था कि आपके गद्य-काव्य' तो लिखे मूसा पढे खुदा' की हालत के होते हैं उन्ह कोई पढे तो कैस पढे? उन्ह मैंन विनोद म उत्तर दिया था, जी, आपके लिए मैं अपन 'कर्मवीर के अग्रलेख और टिप्पणियाँ लिखता हूँ, कृपया आप उन्ह पढा करें।' एक दूसरे पत्र म उन्ही मित्र न यह शिकायत की थी कि सभी गद्य-काव्य-लेखक तो ऊल-जलूल भाषा लिखत हैं, किस किसका रोना रोइए? उन्हें मैंन फिर

उत्तर दिया था जिसमे एक वाक्य यह भी था 'आपने यदि गद्य-काव्य कुछ पुस्तकों म पढे है तब तो बहुत लाचार हूँ, किन्तु यदि किसी नियत-कालिक मे पढे है, तो उसम गद्य काव्य के सिवाय और भी बहुत कुछ पढने का रहा होगा क्यो न आप उसे आनन्दपूवक पढें ?' यह तो विनाद हुआ, किन्तु विचारा को पढनेवाले लोगो से यही निवेदन है कि अध्ययन के, आनन्द के अथवा अनुभूति के अभ्यास मे यदि वे खयाल ही ढूढते हैं तो विश्व के पढन-लिखन क क्षेत्र म उन्हे कुछ गहरी डुबकी लगानी ही होगी किन्तु मैं इस कठिन भाषा का समथन नही मानता । जो ऐसी भाषा का लगातार उपयोग करते हैं जिसे लिखते हो कठिन होन के कारण जन जीवन म पहुँचन के पख तोड दिये जाते हो ऐसी रचनाएँ चाहे जितनी श्रेष्ठ हो, वे जन जीवन से दूर और कभी कभी निरुपयोगी सास्कृतिक वस्तों मे बाधकर रख दन की चीज बन जाती हैं। मैं इस प्रवत्ति से डरता हूँ। मैं इस प्रवत्ति से भी डरता हूँ कि साहित्य के महान क्षत्र म सबसे विनम्र रहन की प्रवत्ति जाग्रत की जाय। मुझे भय है कि इस प्रवृत्ति स समाज के घटक समाज के दगाबाज बनते हैं। इसी प्रवत्ति मे व्यक्ति अपनी महत्ता के अह क कारण केवल अपन मे व्यस्त, अपने म मस्त और अपना ही अभ्यस्त होकर बठ जाना है।

जीवन म जा जूझते हैं बलि हो उठते हैं अथवा साधनशीलता मे सर्वोच्च हो उठते हैं वे जीवन को लिख नही पाते। उधर वे हैं जिनका साहित्य कभी जीवन की झड नही झेलता। एसा व्यक्ति बलिदान के गीत गाता है जिसका बलिदान से कभी कोई रिश्ता ही नहीं रहा। मेरा नम्र प्रयास रहता है कि मैं बलि और जीवन का सर्वोच्च पूजा भावना क साथ, भूला पर व्यथा, और भोगे हुए शूला पर रग तथा श्रद्धा से साहित्य म उतारन का प्रयास करूँ भले ही वह मुझस सधे या न सधे। वैदिक वाणी म ईश्वर को 'स्वयभू' कहा है—अपन-आप उत्पन्न होने वाला। उसे कवि भी कहा है। गणित के हिसाब से जो हो गणित के हिसाब से भी, मेरी मान्यता यही रहनी है कि मैं कवि को 'स्वयभू' मानू। भले ही मुझस कविता लिखत समय कुछ न बनता हो, किन्तु मैं जिन कवियों का पढता हूँ, उनके प्रति रहन-वाली स्वयभू भावना का सम्मान करता रहता हूँ। जब वे अपनी किसी कलाकृति का रूप अपनी यादा म सजाया, बनाया या बिगाडा करते हैं तब

वे अपने ही 'कला पिता' होते हैं, कला पिता होने के दढ भाव से बोझीले होते हैं। जब उनकी कला का रूप बन चुकता है, तब वे कला-माता के गुण-गौरव से गोद भरे होते हैं, किन्तु जब उनकी कला रूप ग्रहण करके कागज पर उतर आती है, तब मानो वे 'कलापुत्र' होकर विश्व की नजर और समझ की गोद मे खेलने के लिए जगत म चल देते हैं। अपनी इस धारणा का मैंने ही कई बार मजाक उडाया है, किन्तु इस धारणा के प्रति मेरी श्रद्धा है, क्योकि 'स्वयभू' शब्द का अर्थ मैं अपने सामने स्पष्ट कर पाता हूँ।

मैं वहाँ लडन की प्रवृत्ति रखना चाहता हूँ, जहाँ साहित्य की चौमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व को, भले ही वह परिस्थितियो की कैसी ही कठोर भटिठ्या मे तपा हो, न हम निखरने देते हैं, न उभरन देते हैं। जन जीवन की ओर से तो मुझे यह कहना है कि सूर, तुलसी मीरा और कबीर को तथा अन्य सन्त-कवियो को गाव-गँवैयो के लोग उतना नही समझते, जितना शहराती लोग समझते होंगे, किन्तु गांवो की चौपालो पर और समारोहो मे इन कवियो और सन्तो के गीत किस भाव भक्ति से गाये जाते है, यह कौन नही जानते। अत विचारो की निगूढता की उपेक्षा करनवाला हमारा समाज तो नही है, भले ही वह आज भी छियासी फी सदी बे पढा हो। यह तो हमी हैं, हमी शहराती हैं कि साहित्य को जन जीवन के पास पहुँचाते भय खाते हैं। एसा कैसा दुर्गन्धित और दूषित द्रव्य हमारे पास है, जिसे हम जन जीवन के पास पहुँचाते डरते हैं, उस जीवन के पास जिसका स्थान गांधीजी के शब्दो मे 'जनता जगदीश्वर' कहा जाता है। आत्म सकीर्तन के स्वर को यदि हम थोडा कम कर लें, तो युग की कला को दूर दूर तक पहुँचाने की हमारी इच्छा होगी। इस दिशा का साहित्य बने, फले फूले, यह मेरी हिमायत होती है। पौने चार दिमागी एयाशो की बाह पर युग की वाणी के पैरो म बडे बडे पथरीले गहने डाल देना, जिससे वह जीवन म सचार न कर सके, मुझे अभीष्ट नही है।

गद्य मे मैं लेखको और कलाकारो के लिए चाहे जितना लडू, किन्तु कला मे मैं भीख की भाषा पसन्द नही करता। मैं निवेदन करूँ कि कला मे वादो पर मेरा कभी विश्वास नही रहा। किसी रचना को कोई छायावादी कहे, रहस्यवादी कहे प्रगतिवादी कहे या प्रतीकवादी कहे, इन बातो से मुझे

कभी कुछ नही लेना-देना। मैं यह भी नही मानता कि बारीक-खयाली केवल पद्य म लिखी जा सकती है, गद्य म नहीं। केवल मैं इतना साहस चाहता हूँ कि हम गद्य को गद्य और पद्य को पद्य कह सकें। कला का समथ कला का, चाहे जो रूप सँवारे, वह गा उठेगा तो जगत् भी उसके साथ गा उठेगा, वह अद्ध गद्य अद्ध पद्य म लिखेगा तो लोग उसे पढन लगेंगे किन्तु इस दिशा म हम इस धारा के दोना तटा का सयत ज्ञान रहना चाहिए। यदि मैं सामथ्यहीन हूँ तो यह क्या न सोचू कि मेरी जिद स कोई गद्य का पद्य नही कहने लगगा और पद्य को गद्य नही कहगा, हा कला वे दाना ओर रहगी। सिफ इतना ही स्मरण रह कि भाषा का कुतुबमीनार खडा करके उस उतने बडे आडम्बर म हम तिल भर बात न कह दें। हमार समालाचक से हमारा चाह जो रिश्ता बन जाय और वह हमारी प्रशसा एक पलडे पर रख ले और कम स कम पिछले सौ वर्षो स कला और कविता पर लगाय जानवाले सदेह चिह्नो का एकत्र कर ले तो हमारे इस कथन से मिलत जुलत कथन हम पीढी दर-पीढी मिलत चले जाएँगे। या वैदिक युग म भी हम सदा छन्द ही नही लिखत थ। गायत्री उष्णक त्रिष्टुप, अनुष्टुप आदि छन्दा स भिन्न हमारे पूवज सूत्र लिखा करत थे। हम आज तक उन्ह मानते हैं। काव्य और कलाओ के नाम पर जो हाट म आ जाय या बाट म पड जाय, वह सब तो काव्य और कला नही हो सकता नही कहा जा सकता किन्तु नवीन और प्राचीन के पथ-सचलन का अन्तर न कभी मिटाया जा सकता है न मिटाया जा सकेगा। फिर यह शिकायत अकेले हिन्दी के कवियो क खिलाफ नही है, अकेले भारतवष मे ही नही है। कला क पथ-सचलन और सांस लन की यह विश्वव्याप्त बीमारी है। अत हम छन्दा म कला और कला मे छन्द खोजने का प्रयास कभी-कभी राक सकें और कला के समय कला और छन्द क समय छन्द देखें, तो न हम ही अपशब्द कहन मे स्वच्छन्द हो जाएँगे और न कला के नवीन पथ सचलन का ही उद्दण्ड कहन लगेंगे। वादो म बिलकुल आस्था न रखत हुए भी मेरी यह भावना है।

मेरे विचार स नीति म वचना का प्रभाव सयम को जाग्रत करता है, सयम प्रकारान्तर से अतप्ति का बल दता है, इसी प्रकार अतप्ति स विश्व की सृजनात्मक प्रेरणाआ, सूत्रा, आविष्कारो, समपणा और बलिदाना का

जन्म होता है। यो तो प्रतिभा सदा ही भली लडकी की तरह ससार मे नही आयी। चोरी, शरारत, गुनाह पर गुनाह, गलत है कि स्वाध्याय न जब बनाया, व्यक्ति बडा ही बनाया। हाँ, पूजा भावना ने गिरते हुए मानव को सम्हाला, सुलझाया और ऊँचे पर उठाया। उसने जिन्दगी के घट, दिन, महीन, और बरस भारी नही पडने दिये। उसी की कृपा है कि आनन्द और भयकरताओ मे स समान रस की प्राप्ति होती है। व्यक्ति से परे समूह, समूह से परे ब्रह्माण्ड के प्रति चौकन्ना केवल समपणशील व्यक्ति ही रह सकता है, क्योकि अध्ययन मे और यात्रा मे जड गगा को देख तो डाला, किन्तु उससे जानकारी और कभी कभी ज्ञान के भी दशन हुए, किन्तु इनके केवल हाथ पाँव मात्र मिले। मानव ग्रन्थो को पढकर बिना शरीर के ज्ञान की अकमण्य आत्मा को घसीटकर घूमते रहे।

